कुरुक्षेत्र

अगस्त 1992

तीन रुपये

पर्यावरण और सामाजिक वानिकी

37, अंक 10 श्रावण–भाद्रपद, शक 1914

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य, चित्र आदि भेजिए। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

सम्पादक : राम बोध मिश्र
सहायक सम्पादक : [illegible]
उप सम्पादक : [illegible]

विज्ञापन प्रबंधक : बैजनाथ राजभर
व्यापार व्यवस्थापक : जसवंत सिंह
सहायक व्यापार व्यवस्थापक : शकुंतला
उत्पादन अधिकारी : के. आर. कृष्णन
आवरण साज-सज्जा : अलका
एक प्रति : 3.00 रु० वार्षिक चन्दा : 30 रु०

फोटो साभार : राष्ट्रीय परती भूमि विकास बोर्ड

विषय सूची

चतुर्दिक विकास के लिए सामाजिक वानिकी जरूरी **रामजी प्रसाद सिंह**	2
वानिकी और पर्यावरण **डॉ० कु० पुष्पा अग्रवाल**	5
क्या देश मैदान में बदल जायेगा ? **डॉ० विनोद गुप्ता**	8
वनों का प्रबंध एवं परीरक्षण **धनंजय कुमार मिश्र**	11
वृक्ष (कविता) **डॉ० मेहता नगेन्द्र सिंह**	14
धरती आकाश के ओर-छोर **आशारानी व्होरा**	15
सामाजिक वानिकी **विनय जोशी**	18
रिओ की राय–धरती की रक्षा करो **डॉ० रमेश दत्त शर्मा**	22
वन सुरक्षा का एक अभिनव प्रयास **पी०के० मर्कप**	25
वन सम्पदा एवं पर्यावरण **गदाधर भट्ट**	30
पर्यावरणीय प्रदूषण और पारिस्थितिकी असंतुलन **सत्यभान यादव**	33
पर्यावरण और बच्चे **सत्यव्रत आर्य**	36
वानिकी में ग्राम पंचायतों की भूमिका **डॉ० बी० एस० चितलंगी**	39
वन संरक्षण-जन सहयोग **भारत डोंगरा**	43
सामाजिक वानिकी एवं पर्यावरण संरक्षण **महेश चन्द सिंघल**	45
कृषि और वानिकी : नये दृष्टिकोण की आवश्यकता **डॉ० दिनेश मणि**	49
वन और कृषि **कु० नीलिमा सिरोठिया**	51
भारतीय कृषि में वानिकी **डॉ० दिनेश चमोला**	53

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।
दूरभाष : 384888

चतुर्दिक विकास के लिए सामाजिक वानिकी जरूरी

□ रामजी प्रसाद सिंह □

अक्सर खबरें मिलती हैं कि रेगिस्तानी क्षेत्र बढ़ रहे हैं, कागज़ की कमी के कारण पाठ्य पुस्तकों के प्रकाशन रुके हैं, धरती पर उष्णता बढ़ रही है, कहीं वर्षा कम हो रही है तो कहीं बाढ़ का प्रकोप बढ़ता जा रहा है। कृत्रिम दूध और घी के निर्माण के बावजूद देश में दूध का अभाव बना हुआ है। जलाशयों और विशालकाय बांधों के जल-भंडारण की क्षमता घटती जा रही है, क्योंकि गाद की वृद्धि के कारण उनकी निचली सतह उथली होती जा रही है। लाखों टन उर्वरक और कीटनाशक औषधियों के उपयोग के बावजूद जमीन की उर्वरा-शक्ति में अपेक्षित सुधार नहीं हो रहा है। जलावन की लकड़ियों के दाम अनाज से ज्यादा हो गये हैं। नदियों के जल की कौन कहे, हवा भी प्रदूषित हो गयी है।

इसके क्या कारण हैं ? इस प्रश्न का उत्तर यदि एक वाक्य में मांगा जाय तो कहना होगा कि हम लोगों ने जंगलों की अंधाधुंध कटाई करके इन सारी बीमारियों को एक मुश्त खरीद लिया है।

न्यूनतम आवश्यकता

वैज्ञानिकों का कहना है कि धरती की हरीतिमा को कायम रखने तथा पर्यावरण को संतुलित रखने के लिए, देश के एक-तिहाई भू-भाग को वनों से आच्छादित रखना आवश्यक है। परन्तु, भारत में केवल चौदह प्रतिशत भू-भाग में जंगल हैं, जब कि 22 प्रतिशत भू-भाग को जंगली क्षेत्र कहा जाता है। इस असंतुलन को दूर करने के लिए कम से कम पांच करोड़ वृक्ष हर साल लगाये जाने की आवश्यकता है। भारत जैसे कृषि-प्रधान देश के लिए वनों की उपयोगिता प्राचीन काल से महसूस की गई थी। इसीलिए इस देश में बाग-बगीचों, जलाशयों आदि के निर्माण को, पुण्य कार्य घोषित किया गया था। पीपल के पेड़ में प्रतिदिन जल देने की परिपाटी थी। प्रत्येक घर में तुलसी का पौधा लगाने का रिवाज था। किन्तु जैसे-जैसे आधुनिक सभ्यता का उदय हुआ, रुढ़ि समझ कर उनका परित्याग कर दिया गया। परन्तु जैसे-जैसे औद्योगिक विकास की गति तेज हुई, वनों की उपयोगिता की ओर वैज्ञानिकों और प्रशासकों का ध्यान केन्द्रित होने लगा।

विधायी संरक्षण

भारत सरकार ने वनों की सुरक्षा की आवश्यकता के प्रति अपनी दिलचस्पी लगभग 1860 में प्रदर्शित की। इसके फलस्वरूप 1865 में इंडियन फोरेस्ट एक्ट बनाया गया। प्रारंभ में इसका उद्देश्य मुख्यतः वन्य-जीवन की रक्षा थी, परन्तु 1927 में इस विषय पर एक व्यापक अधिनियम बनाया गया। इसमें वनों की जमीन को खेती में बदलने पर रोक लगायी गयी और वनों को नुकसान पहुंचाने वालों को दंडित किये जाने का प्रावधान किया। कुछ संशोधनो के साथ यह कानून आज भी लागू है। परन्तु इसके आधार पर नये कानून का प्रारूप तैयार किया जा रहा है।

राष्ट्रीय वन-नीति

स्वराज के बाद 1952 में प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अपनी वन-नीति की घोषणा करायी। उसके अनुसार देश के उस 30 प्रतिशत भू-भाग को वन-क्षेत्र बनाने का लक्ष्य बनाया गया। तत्कालीन वन मंत्री श्री कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी के नेतृत्व में वन-महोत्सव का वार्षिक आयोजन आरंभ किया। इसके कारण वनों की महत्ता के बारे में पर्याप्त जन-जागृति पैदा हुई।

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी और श्री राजीव गांधी ने भी इस ओर काफ़ी ध्यान दिया। श्रीमती गांधी ने 1977 में 42वें संविधान संशोधन अधिनियम के जरिये संविधान में धारा 51(छ) को जोड़कर वन, झील, नदी और वन्य-प्राणियों की रक्षा को नागरिकों का मूल कर्त्तव्य घोषित कराया। इसके पहले 1974 में, श्रीमती गांधी ने नदियों के जल को प्रदूषण से बचाने के लिए जल-प्रदूषण-नियंत्रण कानून बनाया था। इसमें नदियों में प्रदूषित जल या कचरा फेंकने वाले कारखानों और नगरपालिकाओं को दंडित करने का प्रावधान किया गया था। साथ ही प्रशासनिक कदम के तौर पर नालियों के जल को शुद्ध कर विष-रहित बनाने के लिए बड़े-बड़े शहरों में अनेक संयंत्र लगाये गये। सन् 1980 में दूसरी बार प्रधानमंत्रित्व संभालने के बाद श्रीमती गांधी ने वन (संरक्षण) अधिनियम बनवाया। यह प्रावधान कराया गया कि वन-भूमि का उपयोग किसी अन्य

काम में नहीं किया जाय । किसी विकास-योजना के लिए यदि किसी वन-भूमि की आवश्यकता हो तो भी केन्द्र सरकार की अनुमति के बगैर उसका उपयोग नहीं किया जाय । विकास योजनाओं के लिए यदि भारत सरकार राज्यों को वन-भूमि के उपयोग की अनुमति देती है तो यह शर्त रख देती है कि उतनी ही अतिरिक्त जमीन में नया वन लगाया जाये ।

वायु-प्रदूषण रोकने के लिए भी श्रीमती इंदिरा गांधी ने एक कानून बनवाया था । इस कानून के अनुसरण में प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने गंगा के जल को प्रदूषण विहीन बनाने के लिए एक विशाल परियोजना शुरू करायी थी । श्री राजीव गांधी ने वन विभाग को पर्यावरण विभाग से जोड़ कर एक पृथक मंत्रालय बनाया और इसे कैबिनेट स्तर के मंत्री के अधीन किया ।

श्री राजीव गांधी ने 1988 में नयी राष्ट्रीय वन नीति की घोषणा की । इसमें वनों की रक्षा और उसके विकास में जन साधारण को भागीदार बनाने का संकल्प लिया ।

लम्बा सफ़र

इसके बावजूद देश के एक तिहाई भू-भाग को जंगलों से आच्छादित करने का लक्ष्य पूरा नहीं हुआ है । इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कम से कम 320 लाख हैक्टेयर जमीन में और वन लगाना होगा । इसी तरह 260 लाख हैक्टेयर जमीन में, जो सिर्फ नाम के लिए जंगल की जमीन कहलाती है, सघन जंगल लगाना होगा । इसके लिए पर्याप्त जन-सहयोग चाहिए । यह काम अकेले सरकार नहीं कर सकती । 580 लाख हैक्टेयर जमीन में जंगल लगाने के लिए 10 लाख हैक्टेयर प्रति वर्ष की वर्तमान दर से सरकार को 58 वर्ष का समय लगेगा । इस बीच साढ़े 27 लाख हैक्टेयर जंगल की और कटाई हो जायेगी, क्योंकि इन दिनों औसतन साढ़े 47 हजार हैक्टेयर जंगल हर साल कट रहे हैं । सरकार को इसकी भी भरपाई करनी होगी ।

विकल्प नहीं

एक ओर बढ़ती हुई आबादी के लिये इमारती लकड़ी, जलावन की लकड़ी और चारे की आवश्यकता की पूर्ति की समस्या है, दूसरी ओर वनों पर आधारित उद्योग-धंधों की आवश्यकता को भी पूरा करना है ।

यह बात भी ज़ाहिर है कि कोयले के भंडार भी 50-60 वर्षों में समाप्त होने वाले हैं । इसके बाद ईंधन और ऊर्जा की आवश्यकता की पूर्ति के लिए देश को केवल जल-विद्युत और नाभिकीय विद्युत पर निर्भर होना पड़ेगा । किन्तु जल-विद्युत और नाभिकीय विद्युत की उपलब्धियां भी सीमित हैं । गैस और पेट्रोलियम की खोज के लिए समुद्र-तल में भी सैकड़ों कूप खोदे गये हैं फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि भारत को अभी 20वीं सदी के मध्य तक अधिकांशतः प्रकृति सुलभ ऊर्जा पर ही भरोसा करना पड़ेगा ।

सामाजिक वानिकी

इसी दृष्टि से कृषि आयोग ने 1976 में सिफारिश की कि वन-महोत्सव को जन-आन्दोलन बनाया जाय और प्रत्येक गांव को जलावन और इमारती लकड़ी की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपनी फालतू जमीन में अपनी अधिक से अधिक संख्या में शीघ्र तैयार होने वाले उपयोगी वृक्ष लगाने के लिए प्रेरित किया जाय । साथ ही ग्रामीणों को वृक्षों की खेती करने के लिए प्रेरित किया जाए ताकि वे उद्योगों की जरूरत की लकड़ियां भी सुलभ कर सकें । साथ ही, वे अपनी जीविका उपार्जित करने के अलावा कुछ आर्थिक लाभ उठा सकें । सरकार ने यह सिफ़ारिश स्वीकार कर ली है ।

सचमुच देश के औद्योगिक विकास के साथ-साथ काठ और लकड़ियों के अलावा वन में पैदा होने वाले फल-फूल, मूल, पत्तियों और बीजों की मांग, बहुत अधिक बढ़ गयी है । वनों की उपज पर आधारित उद्योगों की संख्या बढ़ रही है । लघु उद्योगों में भी खिलौना, डिब्बे, उपस्कर आदि बनाने के लिए तरह-तरह के काठों की मांग बहुत बढ़ती जा रही है । रक्षा, संचार, लोक-निर्माण विभाग और खनन विभाग के अलावा विद्युत बोर्डों को भी खंभे, स्लीपर, कुन्दे आदि की भी भारी आवश्यकता होती है । कागज और लुग्दी के निर्माण के लिए, बांस और कोमल काठ की मांग पूरी नहीं हो रही है । इसके कारण सरकार को करोड़ों रुपये की विदेशी-मुद्रा खर्च करके विदेशों से कागज मंगाना पड़ रहा है ।

भारत में ''प्लाई-वुड'' और ''फाइबर-बोर्ड'' के कारखानों की संख्या पांच सौ से अधिक हो गयी है । इनमें उच्च कोटि के प्लाई और बोर्ड बनने लगे हैं, जिनके निर्यात की काफ़ी गुंजाइश है ।

ऐसी अवस्था में, गांव-गांव में उपलब्ध बंजर भूमि, पहाड़ी भूमि, मरुभूमि, नदियों के किनारों की उबड़-खाबड़ जमीन, ग्राम सभा की जमीन आदि पर पेड़ लगा कर, खेती से अधिक धन कमाया जा सकता है । अकेले कागज उद्योग को लुग्दी बनाने के लिए करीब 35 लाख टन बांस, 8 लाख टन बगासी और

23 लाख टन अन्य घास-फूस की हर साल जरूरत होती है। इसी तरह, पैकिंग उद्योग के लिए भी तरह-तरह की हल्की लकड़ियों की मांग बढ़ती जा रही है। इस तरह की लकड़ियों वाले वृक्ष आम तौर पर 5-6 वर्षों में तैयार हो जाते हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि स्थान-विशेष में, स्थानीय जरूरत की लकड़ियां स्थानीय लोगों द्वारा पैदा की जायें। इसके लिए स्थानीय लोगों को विशेष प्रशिक्षण तथा तकनीकी सहायता के अलावा वित्तीय सहायता भी दी जाये।

लाभ

इससे एक ओर प्रति हैक्टेयर उत्पादन की वृद्धि होगी, गांवों में रोजगार के अवसर बढ़ेंगे; ग्रामीण निर्धनता दूर होगी; उद्योगों को स्थानीय तौर पर कच्चे माल मिलेंगे। लकड़ी पर आधारित लघु उद्योगों का विस्तार होगा; बंजर, बेकार और परती भूमि का उपयोग होगा तथा औद्योगिक उत्पादन बढ़ने के बाद निर्यात की संभावना बढ़ेगी। सर्वाधिक लाभ यह होगा कि जंगलों के विस्तार अथवा पेड़-पौधों की संख्या बढ़ने से पर्यावरण में संतुलन पैदा होगा। इसके फलस्वरूप वातावरण सुखद और स्वास्थ्यकर बनेगा। जंगलों और पेड़ों के विस्तार से वर्षा की मात्रा बढ़ेगी, भूमि का क्षरण बंद होगा। स्वभावतः कृषि-उत्पादन बढ़ेगा। साथ ही, उपयुक्त जंगलों के विकास से लकड़ियों के आयात में कमी होगी। स्वभावतः विदेशी मुद्रा की बचत होगी। पशु-पालकों को सस्ते दर पर हरी पत्तियों का चारा मिलेगा। फलदार वृक्षों से ग्रामीणों को अतिरिक्त पोषाहार मिलेगा। जलावन की लकड़ी सुलभ हो जाने से ग्रामीणों को गोबर बचाकर खेत में इस्तेमाल करने की प्रेरणा मिलेगी।

स्वयं सेवी संगठनों की भूमिका

भारत सरकार ने गांव-गांव में वानिकी के विकास के लिए स्वयं सेवी संस्थाओं, ग्राम पंचायतों, सहकारी समितियों आदि को जंगल की जमीन वृक्ष लगाने के लिए कुछ शर्तों पर देना स्वीकार किया है। इस योजना के तहत बिहार, गुजरात (राजस्थान, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल), हिमाचल प्रदेश और हरियाणा की राज्य सरकारों ने संस्थाओं को जंगल की जमीन आवंटित करने की योजना तैयार कर ली है।

आठवीं योजना

भारत सरकार ने राष्ट्रीय वन-नीति 1988 के तहत आठवीं योजना काल में जंगलों में निवास करने वाले आदिवासियों और अन्य लोगों को जंगल की परती जमीन, जंगल लगाने के लिए देना स्वीकार किया है। इस परियोजना के तहत जंगल लगाने वालों को उसकी उपज का 55 प्रतिशत हिस्सा मिलेगा। इससे जंगल की आबादी को लाभ होगा और आदिवासियों में बढ़ता हुआ असंतोष दूर होगा।

भारत सरकार ने निर्देश दिया है कि जंगल की जमीन पर अतिक्रमण के पुराने मामलों को नियमित घोषित किया जाये। जंगली जानवरों द्वारा हताहत परिवारों को सहायता दी जाय और जंगली गांवों को 'राजस्व-गांव' घोषित किया जाय। (1985-90) में सामाजिक वानिकी पर भारत सरकार ने 212 करोड़ 42 लाख रुपये खर्च कर 161 करोड़ 37 लाख वृक्ष लगवाए। अधिकृत आंकड़ों के अनुसार सातवीं योजना काल में सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के तहत कुल 1694 करोड़ पौधे लगाये गये। इनमें 92,000 हैक्टेयर सरकारी जमीन पर लगाये गये पौधे शामिल हैं। कुल मिलाकर 1985-90 में 88 लाख हैक्टेयर जमीन में जंगल लगाया गया।

उत्साही ग्रामीण युवकों को इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लेना चाहिये। इसके लिये पंजीकृत स्वयं सेवी संगठनों के जन-सहयोग विकास एवं ग्रामीण औद्योगिकी परिषद् (कापार्ट) नई दिल्ली से भी सहायता मिल सकती है। राष्ट्रीय ग्रामीण विकास कोष, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली, राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, नई दिल्ली से सहायता प्राप्त की जा सकती है।

राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड ने 1990-91 में 8[illegible] करोड़, 1991-92 में 121 करोड़ और खर्च कर विभिन्न स्वयंसेवी संगठनों को बंजर अथवा परती भूमि में वृक्ष लगाने के लिए सहायता की अथवा बंजर-भूमि पर वृक्ष लगाने की दृष्टि से अनुसंधान में सहायता की। चालू वित्त वर्ष में बोर्ड का परिव्यय 115 करोड़ रुपये रखा गया है।

बेरोजगार युवकों को अपनी पौध-वाटिका (नर्सरी) लगानी चाहिए। इसके लिए सरकार वित्तीय सहायता देती है।

सार्वजनिक स्थानों,पंचायतों, विद्यालयों, मठों, मंदिरों के परिसर में लगाये गये वृक्षों की रक्षा की जिम्मेदारी उन्हीं के अधिकारियों को दी जानी चाहिए तथा उत्तम काम करने वाले अधिकारियों को जहां पुरस्कृत करना चाहिए, वहीं वृक्षों की उपेक्षा करने वाले को दंडित किया जाना चाहिए।

बी/2बी-285 जनकपु[illegible]
नई दिल्ली-5[illegible]

वानिकी और पर्यावरण

□ डॉ० (कु.) पुष्पा अग्रवाल □

यह पृथ्वी अरबों साल पुरानी है किन्तु मनुष्य के अस्तित्व की अवधि 20 लाख वर्षों से कुछ ही अधिक है। इससे पूर्व तापमान या आर्द्रता ऐसी नहीं थी कि मानव जीवन सम्भव हो सके। जैसे-जैसे पृथ्वी की भौतिक परिस्थितियां अनुकूल होती गईं वैसे-वैसे जीव पनपने लगे। इस जीव और उसके आस-पास स्थित सब कुछ कहलाया पर्यावरण। इस प्रकार से समस्त वनस्पतियां, पशु-पक्षी, कीट पतंग, नदी-नाले, वन पर्वत और सभी भौतिक स्थितियां जो मानव के बाह्य में उपलब्ध हैं, मानव का पर्यावरण हैं। इसे जीवन मंडल भी कहा जा सकता है, दूसरे शब्दों में यह कहना असमीचीन न होगा कि ब्रह्माण्ड का वह भाग जहां जीवन सम्भव है, पर्यावरण है। जीवन मंडल के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यह एक प्राणी के रूप में कार्य करता है। जीव मंडल के सभी अंग एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। परिणामतया एक अंग को हानि होने पर दूसरा भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। इस प्रभाव के कारण जीव मण्डल की क्रमबद्धता में अड़चन आती है। आज के औद्योगिक युग में यह अड़चन बढ़ती जा रही है जिससे मानवीय गतिविधियों और प्राकृतिक परिस्थितियों के बीच तादात्म्य टूटता जा रहा है।

आज तक के उपलब्ध ज्ञान के अनुसार पृथ्वी ही एकमात्र ऐसा ग्रह है जिस पर जीवन विद्यमान है। पृथ्वी पर लाखों प्रकार के जीव रहते हैं। वे सभी आपस में एक दूसरे से तथा अपने आसपास की निर्जीव वस्तुओं के साथ किसी न किसी तरह सम्बन्धित भी हैं और एक दूसरे पर अवलम्बित भी, इसी से सन्तुलन बना रहता है। किन्तु जब कोई एक वस्तु जरूरत से अधिक घट या बढ़ जाती है तो यह सन्तुलन बिगड़ जाता है। मानव प्रकृति का सबसे विकसित प्राणी है। आज इसकी गतिविधियों से प्रकृति का सन्तुलन बिगड़ रहा है।

वन जीव मण्डल के प्रमुख अंग हैं। ये जीव मण्डल की क्रमबद्धता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। वनों के ह्रास से पर्यावरण असंतुलित होने लगता है और मानव जीवन के उत्कर्ष पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जीव मण्डल के सबसे महत्वपूर्ण अंग, जिन पर जीवन आधारित है, मिट्टी, पानी और हवा है। वन इन तीनों पर उल्लेखनीय मात्रा में प्रभाव डालते हैं तथा वनस्पतियों की अवैध कटाई, अवैध शिकार, अवैध चराई, विभिन्न कीट, अग्निकाण्ड, अम्लीय वर्षा, ओजोन ह्रास, ध्वनि प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण, अनावृष्टि आदि से प्रभावित होते हैं।

विकास के बढ़ते चरणों ने अनेकानेक पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म दिया है। आज वह पर्यावरण के सर्वांगीण क्षरण से त्रस्त हैं। जल, वायु और मिट्टी ही नहीं, मानसिक पर्यावरण भी गहन रूप से प्रदूषित हैं, और इन सब का निदान है वनस्पति जगत के पास, प्रदूषक गैसों को सोखना, प्राण वायु को छोड़ना, आर्थिक सम्पन्नता प्रदान करना, मानसिक उल्लास उत्पन्न करना तथा पानी और भूमि का संरक्षण करना आदि सभी तो वनस्पति जगत के कारण सम्भव हैं।

वनस्पति जगत में भी वृक्षों का विशेष महत्व है। वातावरण में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध कार्बन डाई ऑक्साइड को कम करने में वृक्ष सर्वाधिक उपयोगी है। हवा ही नहीं ये कार्बन को बहु उपयोगी लकड़ी में बदल देते हैं और सल्फर डाइऑक्साइड, जैसी गैसों को घटा कर जीवन को सुरक्षित रखते हैं।

भूमि को अपनी जड़ों द्वारा जकड़ कर, हवा और वर्षा की सीधी और वेगवान धार से अपने वितान द्वारा बचाकर, कटाव से सुरक्षित रखने में इनसे सरल, सुलभ और सस्ता साधन और कोई नहीं है। इनकी पत्तियां टहनियां और फूल आदि भाग धरती पर झड़ कर सड़ते हैं, इससे एक ओर तो पृथ्वी अधिक उपजाऊ बनती है और दूसरी ओर उसकी छिद्रिलता बढ़ जाती है जिससे वर्षा का पानी 15 से 40 प्रतिशत तक पृथ्वी में रिस जाता है।

इसके अतिरिक्त वनस्पति जगत से अनेकों प्रकार के खाद्य पदार्थ, दैनिक उपयोग में आने वाली वस्तुएं, भोजन, वस्त्र एवं भवन निर्माण सामग्री भी उपलब्ध होती है। वनस्पतियों से ही लगभग 30 प्रतिशत औषधियां उपलब्ध होती हैं। वृक्षों की छाल, फूल पत्ते और जड़ें ही नहीं अनेकों प्रकार की जड़ी बूटियां भी वनों से ही मिलती हैं, जिनका उपयोग मानव प्रारम्भ से

करता आया है। पर्यावरण की विकराल समस्याओं का बृहत स्तर पर वन रोपण और संरक्षण को छोड़ कर कोई विकल्प नहीं है। ऐसे रोपण स्थानीय प्रजातियों के मिश्रित और बहुस्तरीय रोपण होने अपेक्षित हैं, संरक्षण मिलने से प्राकृतिक वन प्रणाली स्वमेव भी स्थापित होने लगेगी। क्योंकि इन से वानिकी का पुनर्स्थापना होगा अतः उपभोक्ता दृष्टिकोण से मुक्त रखना होगा।

मुद्रा प्रणाली, जल संसाधन सन्तुलन, जलवायु सभी कारण, जैविक विभिन्नता आदि इसकी मुख्य उपलब्धि होंगी। प्रकृति प्रणाली को बनाए रखते हुए इन क्रियाओं के सम्पादन के साथ प्रकृति से उपलब्ध उत्पाद का मानव उपभोग कर सकता है। पर्यावरण प्रदूषण के विरुद्ध यह सबसे बड़ी रणनीति हो सकती है।

प्राकृतिक प्रणाली के संरक्षण के अतिरिक्त विभिन्न विशिष्ट परिस्थितियों के लिए भी वन विस्तार आवश्यक है। कल कारखाने विशेष परिस्थितियां बनाते हैं। इन कारखानों से प्रदूषक गैसें, हानिकारक रिसन, कर्कश उच्च आवृत्ति की ध्वनि धूल आदि वातावरण में छोड़ी जाती हैं। यह धूल, धुआं और ध्वनि सर्वाधिक प्रदूषण करते हैं, वैसे तो यान्त्रिक वातावरण का यन्त्रवत् जीवन मानवीय संवेदनशीलता को ही लील जाता है जिससे जीवन में नीरसता और वीभत्सा भर जाती है। वास्तव में आवश्यकता इस बात की है इन प्रदूषक गैसों को, बिना अपने को क्षति पहुंचाए, इन की अधिक संख्या में इन्हें पी जाने वाली प्रजातियां लगाई जाएं कि उन की क्षमता प्रदूषण की हानिकारक क्षमता से अधिक हो। इनमें कुछ वनस्पतियां ऐसी हों जो ऑक्सीजन प्रदान करने के साथ-साथ ध्वनि प्रदूषण के विरुद्ध भी प्रभावशाली हों। इस प्रकार की प्रजातियों में कुछ एक नाम हैं पीपल, बरगद, और फाइकसा पटिकार की प्रजातियां। ध्वनि प्रदूषण को रोकने में मोटी गूदीदार पत्तियों वाली प्रजातियां अधिक लाभदायक होंगी। इसी प्रकार रबड़ के वृक्ष के समान दूध देने वाली प्रजातियां भी वायु और ध्वनि के प्रदूषण को पीती हैं।

धूल के कणों को रोकने में बड़ी पत्तियों की बजाए छोटी और पतली पत्तियों वाली प्रजातियां अधिक उपयोगी पाई गई हैं। आम और इमली आदि के वृक्ष धुएं के साथ-साथ धूल के छोटे-मोटे कणों को छानने में बहुत सहायक पाये गये हैं। इसी प्रकार से विषैली गैसें पानी में जितनी अधिक घुलनशील होंगी उतनी ही सरलता और गति से आम, बरगद, पीपल, जामुन, अशोक, बॉटल ब्रश उसे शोषित कर लेते हैं। जिन पेड़ों की पत्तियों की सतह नम और गीली होती है वे अन्य वृक्षों की तुलना में अधिक कण शोषित करते हैं। वृक्षों की सघनता से मृदा में उत्पन्न सूक्ष्म जीवाष्मों के कारण मृदा भी प्रदूषण को कम करती है। बबूल, बेल, कटहल, नीम, कचनार, अमलतास पीपल, आम, अर्जुन, लसोड़ यदि तेल शोधक कारखानों के प्रदूषणों को निगलते हैं तो पीपल, करंज आदि चमड़े के कारखानों से निकले प्रदूषित पानी के प्रदूषित तत्वों एवं नीम, पलाश, तेन्दू, पीपल, जंगल जलेबी, थर्मल पावर स्टेशनों से निष्कासित प्रदूषक तत्वों को प्रभावहीन करते हैं।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रो० तारक मोहनदास के अनुसार यदि वृक्ष का मूल्य 50 वर्ष के प्रदूषक नियन्त्रक के रूप में आंका जाए तो पांच लाख रुपये और उत्पादित ऑक्सीजन का मूल्य ढाई लाख रुपये होता है। ऐसी स्थिति में उनकी कटाई आर्थिक दृष्टिकोण से भी क्षतिकर है।

चीड़ के वृक्षों की 50 से 100 फुट घनी कतारें 10 से 20 डेसीबल तक ध्वनि कम कर देती हैं। छायादार वृक्ष धूप को पृथ्वी पर पड़ने से एक सीमा तक रोक कर तापमान में 2/3 अंश फारन्हाइट तक कमी कर देते हैं।

जीवनदायी प्राण वायु के प्रदाता एवं प्रदूषक निवारक इन वनों के सामान्य विकास पर मानव द्वारा सम्पादित विकास कार्यों का प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। सड़क, बांध, आवास विकास, कल-कारखानों से सम्बन्धित मानव गतिविधियों ने हिमालय के सघन वनों को अस्त-व्यस्त कर दिया है जबकि वह अपनी विभिन्न दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वन की उपज पर ही निर्भर है। वनस्पतियों के जैविक विनाश का कारण भी मानव ही है। इसके अतिरिक्त अत्यधिक चराई, विभिन्न कीट एवं पक्षी भी हानि पहुंचाते हैं। टिड्डियों की विनाशलीला किसी के लिए अनजानी नहीं है। फिर कभी-कभी वनों में आग लग जाती है। इस वन दहन से भूमि की रासायनिक संरचना ही परिवर्तित हो जाती है। झाड़-झंखाड़, लता, फल-फूल, बीज जो भी इसकी लपेट में आता है, राख हो जाता है।

जल प्रकृति का चमत्कार तो है ही जीवन का अमृत भी है। जीवन पानी से ही आरम्भ हुआ है और इसकी सतत्ता पानी पर ही निर्भर भी है। किन्तु जीवन का यही अमृत जब उन्मत्त हो उठता है तो जीवन के लिए अभिशाप बन जाता है। बाढ़ की भयंकरता और उससे हुए विनाश की ध्वंसलीला अनजानी नहीं है। यदि वन वर्षा के पानी को पृथ्वी को न पिला देते

तो उसका बहाव जीवन को लील-लील जाता है और मानव का पानी के लिए त्राहि-त्राहि करने के अतिरिक्त बहाव के साथ-साथ भूमि क्षय और मिट्टी का बह जाना भी बाढ़ लाने में सहायक होता है । प्रकृति की सृजन शक्ति, मानव की थोड़ा और अधिक संकलित करने की लालसा के कारण भी कम हुई है । आज पेड़ पौधों और वन्य जीवों की अनेकों प्रजातियों के अस्तित्व के लिए खतरा पैदा हो गया है । यदि ओजोन का ह्रास इसी प्रकार होता गया तो पेड़ पौधों के घनेपन में तो रुकावट आएगी ही, फल-फूल नहीं होंगे, खड़े खेत झुलस जाएंगे या फिर जलवायु बदलने से कभी अनावृष्टि और कभी अतिवृष्टि के शिकार होंगे । अम्लीय वर्षा हुई तो रहे सहे वन प्रान्त भी ध्वस्त हो जाएंगे ।

पर्यावरण सुरक्षा के लिए इस प्रकार से वनों का होना अपरिहार्य होते हुए भी कृषि एवं खाद्य संगठन के अनुसार प्रति वर्ष 6000 वर्ग मील वनों का विनाश हो रहा है । न्यूज़वीक के अनुसार जितना समय यह वाक्यांश पढ़ने में लगेगा उतनी देर में ढाई हैक्टेयर वन कट चुके होंगे । वन समाप्त होने से भूमि की उर्वरा शक्ति समाप्त हो रही है एवं भूमि गत जल स्रोत सूख रहे हैं । लगता है मानव अपनी कब्र स्वयं खोद रहा है ।

स्थिति बहुत गम्भीर है । वनों का क्षेत्र लगातार कम होता जा रहा है और उसकी सम्पदा व अनेकों प्रजातियां (वनस्पति की भी और जीव जन्तुओं की भी) लुप्त होती जा रही हैं । यदि प्रकृति की कड़ी एक बार बिगड़ गई तो उसको जोड़ पाना एक जटिल समस्या हो जाएगी तथा मानव अपने ही मायाजाल में उलझ कर रह जाएगा, बाढ़, महामारी, अम्ल वर्षा, आदि में से कौन उसे अपनी दाढ़ों में दबा ले, यह तो भविष्य ही बताएगा ।

72 एस.एफ.एस. अपार्टमेंट
डी.डी.ए. फ्लैट्स,
गौतमनगर, नई दिल्ली

क्या देश मैदान में बदल जायेगा ?

□ डॉ० विनोद गुप्ता □

उपग्रह से प्राप्त तथ्यों से पता चलता है कि भारत में हर साल 13 लाख हैक्टेयर की दर से वन समाप्त हो रहे हैं। यह बहुत ही गंभीर चिंता की बात है क्योंकि वैसे ही देश में वन क्षेत्र बहुत कम हैं उस पर यदि वन विनाश का यह क्रम जारी रहा तो कुछ ही वर्षों में देश वन विहीन हो जायेगा।

विशाल पैमाने पर हो रही वनों की कटाई ने देश के समक्ष अनेक गंभीर खतरे उत्पन्न कर दिये हैं। वन विनाश के कारण न केवल पर्यावरण ही तेजी से नष्ट हो रहा है, बल्कि जल चक्र भी प्रभावित हो रहा है जिससे अतिवृष्टि और अनावृष्टि के दौर बढ़ रहे हैं! अतः यदि वन विनाश को समय रहते नहीं रोका गया तो इसके दूरगामी परिणाम घातक होंगे।

यह भी बड़े अफ़सोस की बात है कि जितना ध्यान वन विकास पर दूसरे देश देते हैं, उतना हम नहीं देते। परिणामस्वरूप हमारे यहां वन क्षेत्र बहुत कम है। विश्व की कुल जनसंख्या का सबसे ज्यादा भाग भारत में निवास करता है जबकि विश्व के कुल वन क्षेत्र का केवल 2 प्रतिशत भाग ही भारत में है। हमारे देश में 748 लाख हैक्टेयर भूमि में वन क्षेत्र फैले हुये हैं, जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का केवल 22.7 प्रतिशत, ही है। जबकि बर्मा में 68 प्रतिशत, जापान में 62 प्रतिशत, स्वीडन में 56 प्रतिशत, रूस में 44 प्रतिशत तथा अमेरिका में कुल भौगोलिक क्षेत्र के 33 प्रतिशत क्षेत्र वनों से आच्छादित है। जितने भी वन क्षेत्र हमारे देश में हैं उनमें भी अधिकांश केवल नाममात्र के वन हैं। भारतीय वन कानून लागू होने से इसमें वनस्पति विहीन वे क्षेत्र भी सम्मिलित हो गए जहां चट्टानें हैं या रेगिस्तान हैं।

वन विकास के सरकारी दावों के बावजूद इस सच से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आज भी वनों की अंधाधुंध कटाई जारी है। भारत के अंतरिक्ष विभाग ने हैदराबाद की नेशनल रिमोट सेंसिंग एजेंसी के उपग्रह छायाचित्रों के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले वे बहुत चौकाने वाले हैं। 1972-75 में देश में, 5, 57, 709 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में वन थे जो 1989-90 में घटकर चार लाख वर्ग किलोमीटर ही रह गए हैं। सन् 1952 में बनी भारतीय वन नीति में यह निर्धारित किया गया था कि देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र के एक तिहाई भाग में वन होने चाहिये। पहाड़ी क्षेत्रों में जहां भूमिक्षरण का भय अधिक हो, कुल भूमि का 60 प्रतिशत भाग वन में रहना आवश्यक है तथा मैदान में जहां भूमि समतल हो तथा भूमि के क्षरण का भय कम रहता हो, वन भूमि का अनुपात 20 प्रतिशत होना चाहिये। राष्ट्रीय वन नीति में 33 प्रतिशत भाग में वन लगाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था, लेकिन वास्तविकता कुछ और ही हुई।

वास्तव में वन क्षेत्र बजाए बढ़ने के घटता ही जा रहा है। सरकार स्वयं इस बात को स्वीकार करती है कि 1952 में बनी राष्ट्रीय वन नीति के बाद से लेकर अब तक कोई 54 लाख हैक्टेयर वन क्षेत्र समाप्त हो चुका है। वन राज्य का विषय है और 95.7 प्रतिशत वन राज्यों के हैं, लेकिन वनों की कटाई को राज्य सरकारें और केन्द्र सरकार मूक दर्शक की भांति देखती रहीं और वन क्षेत्र उजड़ते चले गये।

विगत कुछ वर्षों में वनों का सफाया काफी निर्दयतापूर्वक किया गया है। वन भूमि का उपयोग विभिन्न कार्यों में किया गया। यद्यपि सरकार ने निर्देश जारी किये हैं कि वन क्षेत्र को गैर वन्य कार्यों में इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए और यदि किसी कारणवश गैर वन्य कार्यों के उपयोग में लाना ही हो तो राज्य सरकारों की सहमति से ही ऐसा किया जाए और जहां तक संभव हो, उतनी ही भूमि वनारोपण के लिये देकर उस क्षति की समुचित पूर्ति की जाए। लेकिन इसके बावजूद बड़े पैमाने पर वनों की कटाई गैर वन्य कार्यों के लिए हुई है और हो रही है और उसके स्थान पर पर्याप्त भूमि में वृक्षारोपण नहीं किया जा रहा है। यही कारण है कि वन क्षेत्र सिमटता चला जा रहा है।

भारतीय वनों की कटाई के अनेक कारण रहे हैं। सर्वाधिक वनों की कटाई कृषि कार्यों हेतु की गई। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के फलस्वरूप कृषि कार्य हेतु भूमि कम पड़ने लगी। परिणामस्वरूप 1951 और 1989 के मध्य लगभग 4000 हजार हैक्टेयर वन क्षेत्र की कटाई करके उन भूमियों का कृषि कार्य हेतु उपयोग किया गया। उद्योगीकरण ने भी वन क्षेत्र

नष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । वन क्षेत्रों को उजाड़कर वहां कल कारखानों की स्थापना हुई, वहां वन क्षेत्रों के लुप्त होने की वजह से पर्यावरण के विनाश के खतरे भी बढ़ते जा रहे हैं ।

उद्योग, व्यापार, व्यवसाय एवं अन्य कार्यों के लिये यातायात की जरूरतें पूरी करने के नाम पर कोई 70 हजार हैक्टेयर वन क्षेत्र उजाड़कर उसके स्थान पर सड़कें बनाई गई हैं । इसके अलावा विविध उपयोगों के लिये कोई 10,000 हैक्टेयर वन क्षेत्र का विनाश किया गया है । नदी घाटी परियोजनाओं के लिये भी भारी मात्रा में वनों को नष्ट किया गया । परियोजना के क्रियान्वयन एवं विस्थापितों के पुनर्वास के लिये वनों की बड़े पैमाने पर कटाई की गई । अनुमान है कि कोई 550.3 हजार हैक्टेयर वन क्षेत्र इसी कारण नष्ट कर दिया गया ।

वनों की कटाई का मुख्य कारण ईंधन की खपत है । अनुमान है कि प्रतिदिन लगभग 40 लाख टन जलाऊ लकड़ी की मांग होती है जिसे पूरा करने के लिये जंगल काटे जा रहे हैं । कई आदिवासी जातियां जिनकी आजीविका का अन्य कोई साधन नहीं है, जंगलों से लकड़ियां काटकर अपनी आजीविका चला रहे हैं । जब तक उनकी आजीविका का उचित प्रबंध नहीं हो जाता तब तक जंगल ऐसे ही कटते रहेंगे ।

जब-जब ठेके पर वनों की कटाई हुई है तब-तब इन ठेकेदारों द्वारा भ्रष्ट तरीके अपनाकर निर्धारित मात्रा से अधिक की कटाई की गई है । निःसंदेह इसमें वन विभाग के कतिपय भ्रष्ट कर्मचारी और अधिकारियों का भी हाथ रहा है । जिन कर्मचारियों को वनों की सुरक्षा का दायित्व सौंपा गया है, अगर वे ही बजाए रक्षक के भक्षक बन जाएं तो वन विनाश को कैसे रोका जा सकता है ?

हमारे देश में वनों की अविवेकपूर्ण कटाई हुई है, उसके गंभीर परिणाम सामने आये हैं । उसे देखते हुये यह स्वीकार करना ही होगा कि वन क्षेत्र उजाड़कर हमने अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारी है । वनों की व्यापक कटाई कैसे जल चक्र भी गड़बड़ा गया है । अतिवृष्टि और अनावृष्टि का दौर बढ़ गया है । घने वन जहां वायु में नमी लाकर वर्षा करने में सहायक होते हैं, वहीं वे बाढ़ को रोकने में भी सहायक होते हैं, लेकिन विनाश के कारण अकाल और बाढ़ की स्थितियां निर्मित होने लगी हैं । बार-बार सूखा पड़ने से भी देश में त्राहि-त्राहि मच जाती है । यदि वनों की भारी मात्रा में कटाई नहीं होती है तो देश में बार बार इतना भयंकर सूखा नहीं पड़ता ।

विश्व में सूखे से संबंधित आंकड़ों से पता चलता है कि सन् 1960 और 1980 के बीच सूखा पीड़ित लोगों की संख्या सबसे ज्यादा (यानी कुल विश्व का 80 प्रतिशत) भारत में थी । इस भयंकर वन विनाश के कारण भूमिगत जल स्रोत सूख रहे हैं जिससे ग्रामीण अंचलों में ग्रीष्मकाल में पानी मिलना कठिन हो जाता है । भीषण बाढ़ आना इस बात की पुष्टि करता है कि हमने भारी मात्रा में वन क्षेत्र वीरान कर दिए हैं । चूंकि सघन वन क्षेत्र बाढ़ को रोकने में सहायक होते हैं । लेकिन अंधाधुंध कटाई से अब बाढ़ के वेग को रोकने में अपने आप को असमर्थ पाते हैं । घने वन मिट्टी के कटाव को रोक कर भूमि की उर्वरा शक्ति को नष्ट होने से बचाते हैं, लेकिन वनों की अंधाधुंध कटाई से भू-क्षरण की समस्या बढ़ती ही जा रही है ।

वैज्ञानिकों के अनुसार भारत की 17 करोड़ 50 लाख हैक्टेयर भूमि में से 53 प्रतिशत पानी के बहाव, अम्लीयता, क्षारीयता व अन्य कारणों से कृषि योग्य नहीं रही है । अनुमान है कि प्रतिवर्ष लगभग 600 करोड़ टन उपजाऊ मिट्टी की ऊपरी परत का विनाश हो जाता है । अगर भूमि कटाव की यही गति रही तो अगले 20 वर्षों में देश की एक तिहाई उपजाऊ भूमि कृषि योग्य नहीं रहेगी ।

वनों के विनाश के फलस्वरूप दुर्लभ जंगली जानवर भी लुप्त होते जा रहे हैं । जानवरों को भी जीने का उतना ही अधिकार है जितना की मनुष्य को । लेकिन मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिये जानवरों के आश्रम स्थल जंगल को काटकर जंगली जानवरों के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह लगा दिया है । वन विनाश से न केवल जंगली जानवर ही लुप्त होते जा रहे हैं वरन प्राकृतिक सुंदरता भी नष्ट होती जा रही है और रेगिस्तानों का फैलाव बढ़ता जा रहा है । कई उद्योग तो अपने कच्चे माल के लिये वनों पर ही निर्भर हैं । जैसे–दियासलाई उद्योग, फर्नीचर उद्योग, प्लाईवुड के कारखाने, तेल, दवाइयां, कागज और लुगदी के कारखाने आदि । यदि वन विकास पर ध्यान नहीं दिया गया तो ये सभी उद्योग चौपट हो जाएंगे । देश की भलाई और मानव कल्याण के लिये वृक्षारोपण करना आज सबसे बड़ी आवश्यकता है । यदि देश का हर व्यक्ति मात्र एक पौधा रोपे और आजीवन उसकी देखभाल करे तो करोड़ों पौधे वृक्ष का रूप धारण कर सकते हैं ।

यूं तो मोटे तौर पर वनों का मूल्य उससे प्राप्त होने वाली लकड़ी की कीमत पर आंका जाता है । आज की सरकार भी

प्रायः इसी कीमत का अनुमान लगाकर उनका रखरखाव व रोपण करवाती है। किन्तु यदि हम वैज्ञानिक तरीके से विश्लेषण करें तो हमारे सामने वनों की अमूल्य देन स्पष्ट परिलक्षित होती है।

उदाहरण के तौर पर एक स्वस्थ युवा वृक्ष जिसकी आयु 40-50 वर्ष के मध्य है, उससे प्राप्त होने वाले लाभांश निम्न प्रकार हैं--एक वृक्ष प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा प्रतिवर्ष लगभग 50 टन ऑक्सीजन वायु मंडल में बिखेरता है। इस ऑक्सीजन की कीमत यदि हम मानव द्वारा निर्मित आयोजन से करें तो वह 5000 रुपये होती है।

आज संसार में तीव्र गति से बढ़ रहे पर्यावरण प्रदूषण को दूर करने के लिये यदि हम कृत्रिम यांत्रिकी पद्धति से पर्यावरण प्रदूषण कुछ तो बढ़ेगा ही और उससे होने वाला लाभ न्यून ही होगा।

यदि हम मोटे तौर पर हिसाब लगायें तो वृक्ष जितना प्रदूषण खाकर पचाता है उसकी कीमत 5000 रुपये से तो कम हो ही नहीं सकती।

वायुमंडल में पर्यावरण की मात्रा में आर्द्रता को बनाये रखने में वृक्ष का जो योगदान है उस कमी की पूर्ति यदि भूमिगत बातों से करें तो एक वृक्ष का काम कम से कम 5000 वार्षिक होगा। एक किलो सूखा पदार्थ निर्मित करने में 500 से 10000 किलो तक भूमिगत पानी लग जाता है। जिसकी कमी को ये वृक्ष के हरे पत्ते वायु में बिखेर कर पूरा करते हैं। एक युवा स्वस्थ वृक्ष 80 से 120 वर्गमीटर भूमि के कणों को जल प्रवाह में बहने से रोकता है तथा उतनी भूमि की जैविक उर्वराशक्ति बढ़ाता है।

इस प्रकार यदि भूमि का क्षरण रोकने एवं उर्वरा बनाने के कृत्रिम उपाय किये गये तो न्यूनतम 200 रुपया वार्षिक तो लग ही जायेंगे। किसी एक वृक्ष को किसी प्रकार की क्षति पहुंचाये बिना उस पर आश्रित पशु-पक्षी के निर्वाह का खर्च यदि मनुष्य को निर्वाह करना पड़े तो वह भी न्यूनतम 1000 रुपये वार्षिक से कम न होगा।

फल-फूल तथा सूखी टहनियों से न्यूनतम वार्षिक लाभ 100 रुपये माना ही जा सकता है। इस प्रकार सभी आंकड़े एक युवा वृक्ष की एक वर्ष की कमाई मानी जाये तो 16,300 रुपये वार्षिक के बराबर होगा।

शासन की नीति के अनुसार वृक्ष की आयु 100 वर्ष आंकी गई है तो शेष 50-60 वर्षों में एक वृक्ष 80 लाख रुपये मूल्य की हमारी सेवा करता है। इस प्रकार हर दृष्टि से वन-संरक्षण समाज के लिये अहम् अनिवार्य है। इसकी महत्ता मात्र आर्थिक ही नहीं, नैतिक परिप्रेक्ष्य में भी समझी जानी चाहिये।

वर्तमान समय में तो लोगों ने वृक्षारोपण को एक फैशन समझ लिया है और वृक्षारोपण करने का लोग नाटक करते हैं ताकि अखबारों में उनकी तस्वीरें छपें। छपास के भूखे कभी सच्चे मन से वृक्षारोपण नहीं कर सकते क्योंकि ऐसे लोग पौधा रोपने के पश्चात पीछे मुड़कर नहीं देखते कि उसका क्या हुआ।

यही कारण है कि देश में प्रतिवर्ष करोड़ों पौधे लगाए जाते हैं जिनमें से कुछ हजार पौधे ही जीवित रहते हैं, शेष अंकुरित होने से पूर्व ही नष्ट हो जाते हैं। प्रायः हम लोग कहीं दूर पहाड़ी पर या अपने शहर या गांव से बहुत दूर जाकर वृक्षारोपण कर तो आते हैं लेकिन फिर दोबारा जाकर उनकी देखभाल नहीं करते हैं अतः ये अनुचित है। यदि आपने पौधा रोपा है तो उसकी समुचित देखभाल भी आपको ही करनी चाहिये। अतः पौधा रोपने हेतु पहले उचित भूमि का चयन करना आवश्यक है।

16, सुदामानगर एक्सटेंशन-2
रामटेकरी, मन्दसौर-458001

वनों का प्रबन्ध एवं परिरक्षण

□ धनंजय कुमार मिश्र □

वन हमारी भारतीय सभ्यता और प्राचीन संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। वनों से हमारा प्राचीन सम्बन्ध मित्रवत् रहा है। जब हमारे पूर्वज वनों में रहकर पेड़ों के नीचे कन्दराओं में जीवन व्यतीत करते थे, उनका लालन-पालन वनों से होता था। तन को छिपाने हेतु वस्त्र वनों से मिलता रहता था। उनके जीवन के हर मोड़ पर वन उनका सहयोग किया करते थे। वन्य जीवों से भी उनका सम्बन्ध मित्र का सा ही था। वनों में रहने वाले कुछ वन्य जीव उनके खाने के साधन के रूप में प्रयुक्त होते थे और कुछ जीवों को उन्होंने अपनी रखवाली के कार्य के लिए रखा था। वनों से ही उन्हें जलावन की लकड़ियां भी प्राप्त होती थीं और पेड़ों के पत्तों को वह पहनने के काम में लाता था। एक ओर रात्रि में सोते वक्त यदि उसे बाघ, गेंडा, हाथी इत्यादि जन्तुओं का भय बना रहता था वहीं दूसरी ओर उनसे बचने के लिए जंगल की लकड़ियां जलावन का कार्य करती थी। वन्य जीवों के द्वारा उनके जीवन के दिन दूने होते थे क्योंकि जंगल में तरह-तरह के औषधियुक्त पौधे बीमारी या दुर्घटना के समय उनकी औषधि का कार्य किया करते थे। वन्य जीवों के द्वारा भी उस समय के मनुष्य औषधि तैयार कर लिया करते थे। कुल मिलाकर उस समय वन ही लोगों के जीवन संगी बनकर हर पल उनके साथ रहते थे।

कालान्तर में जैसे-जैसे मनुष्य विकास की सीढ़ियां चढ़ने लगा वह वनों को काटकर उनकी लकड़ियों से तरह-तरह के उपयोगी काष्ठ के सामान बनाने लगा। जंगलों से प्राप्त कुछ रेशेदार पेड़ों से वस्त्रों का निर्माण करके पहनने लगा। पेड़ों को काटकर घर बनाने लगा। वनों से उसने व्यापार करना शुरू किया जंगल जो वनों के हाथ-पैर थे उन्हें काटकर साफ करने लगा और कृषि योग्य भूमि बनाकर उस पर कृषि कार्य करने लगा। वनों से अपना जीवन-निर्वाह करने वाले वन्य जीवों को मार-मार कर उनका भी व्यापार इस विकसित मानव ने आरम्भ कर दिया। उन वन्य जीवों के छाल, उनके मांस, हड्डियां इत्यादि की खरीद-फरोख्त बड़े पैमाने पर आरम्भ हो गई। मनुष्य के लिए यदि यह काल विकास का काल था तो वन्य जीवों के लिए यह काल विनाश का काल हो गया। तरह-तरह के मनोहर, लाभकारी एवं वनों के धरोहर वन्य जीव न केवल कम होने लगे बल्कि उनकी प्रजातियां समाप्त प्रायः हो गई। यह कितने अफसोस की बात है कि अहिंसा रूपी पालन करनेवाले देश के वन्य जीव ही पूर्ण रूपेण हिंसा के शिकार होकर दम तोड़ने लगे। वन्य जीवों के द्वारा जो लाभ मानव को उनके प्रथम चरण यानि प्राचीनतम काल में मिलते थे उससे उसने अपनी आंख मूंद ली।

वनों का प्रबन्ध एवं परिरक्षण

जैसे-जैसे भारतीय सभ्यता का उत्तरोत्तर विकास हुआ उसी अनुपात में वनों की अन्धाधुन्ध कटाई भी हुई। आज देश का 10 से 15 प्रतिशत भाग ही वनों के कब्जे में रह गया है। अन्तर्राष्ट्रीय मानकों की दृष्टि में इसे दुःखद स्थिति ही कहा जायेगा। जब तक इसके एक तिहाई भाग पर वन नहीं होंगे तब तक इसे सुखद स्थिति नहीं कहा जा सकता। कृषि योग्य भूमि की आवश्यकताओं, इमारती लकड़ी, चारा और ईंधन इत्यादि की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक अनुमान के आधार पर प्रतिवर्ष 12-15 लाख हैक्टेयर वनों को काटकर साफ कर दिया गया है।

किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति के विकास में मनुष्य अपना योगदान देते हैं। वन्य जीवों का अप्रत्यक्ष योगदान भी उनसे कहीं कम नहीं होता है। भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत पशु-पक्षी (वन्य प्राणी सहित) एक ही वृहत् परिवार के सदस्य हैं। वन्य जीवों के लगातार कम होने से ही हमारी संस्कृति भी गर्त में जा रही है। भारत सरकार भी वन्य जीवों के प्रबन्ध की ओर लगातार ध्यान दे रही है। सरकार को यह महसूस होने लगा है कि वन्य जीवों का समुचित मात्रा में विद्यमान रहना बहुत आवश्यक है। वन विनाश तथा वन्य जीवों के विनाश को देखते हुए स्कॉटलैण्ड के राबर्ट चैम्बर्स ने सत्य ही लिखा है कि वन नष्ट होते हैं तो जल नष्ट होता है, मत्स्य और शिकार नष्ट होते हैं, फसलें नष्ट होती हैं, पशु नष्ट होते हैं, उर्वरता विदा ले जाती है और तब एक के पीछे एक समस्याएं प्रकट होने लगती हैं —बाढ़, सूखा, आग, अकाल, महामारी। वनों को विकसित करने और देश के एक तिहाई स्थान पर

वनों को लगाने के उद्देश्य से हमारे देश ने एक वानिकी योजना शुरू की है। इससे हमारे देश में वनों के कम होने से उत्पन्न समस्याओं का बहुत हद तक समाधान हो सकेगा।

वनों के कटने से आज सम्पूर्ण मानव जाति के समक्ष जो समस्या उत्पन्न हुई है उसमें प्रदूषण की समस्या सबसे गम्भीर है। आज के सभी महानगर जिस विषम समस्या से त्रस्त हैं वह है प्रदूषण की समस्या। आज प्रदूषण ने अपने दानवी हाथों एवं पैरों को इतना पसार कर रख दिया है कि उससे जूझना भी बहुत मुश्किल हो गया है। इससे लोग पीड़ित होते जा रहे हैं। प्रदूषण को हम धीमा जहर कह सकते हैं क्योंकि बहुत से लोग जब इसके चपेट में आ जाते हैं तो शनैः-शनैः उनकी मौत उनके द्वार पर दस्तक देती है, यमराज उनके दरवाजे पर पहुंच जाते हैं। प्रदूषण के बहुत से प्रभावी प्रकार हैं। प्रथम तो इससे वायु मण्डल प्रभावित होता है। वनों के कटने से जल भी बहुत हद तक प्रभावित होता है। कुल मिलाकर आज हमारा पूरा पर्यावरण ही प्रदूषित होता जा रहा है। भारत की जनसंख्या वृद्धि और कल-कारखानों से निकलने वाले धुएं से पर्यावरण प्रदूषण दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। इसके चलते वायु मण्डल में कार्बन डाई-ऑक्साइड की मात्रा बढ़ती जा रही है। बड़े-बड़े महानगरों के लोगों को आज प्रदूषित हवा में सांस लेना पड़ रहा है। इनके लिए पेड़ लगाना आवश्यक है। वनों का लगाना जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक है वनों का प्रबन्धन। वनों का प्रबन्धन उन्हीं लोगों के हाथों में सौंपा जाना चाहिए जो वनों के विकास हेतु प्रयत्नशील रहते हैं। प्रायः ऐसा देखने को मिलता है कि जो व्यक्ति वनों की सुरक्षा के लिए नियुक्त किए जाते हैं अप्रत्यक्ष रूप से वे ही वनों को कटवाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। हमारे देश में पहाड़िया जाति के शत प्रतिशत लोगों की रोजी-रोटी का कार्य आज भी वनों के माध्यम से ही चलता है। वे आज भी वनों की लकड़ियों को काट कर बाजार में बेचते हैं और उनसे जीवन-निर्वाह का सामान खरीदते हैं। सरकार यद्यपि उनके विकास का प्रयास करने को प्राथमिकता दे रही है परन्तु जब तक वे पढ़-लिखकर दूसरे व्यवसाय नहीं करते तब तक उनकी आजीविका इसी बात पर आधारित रहेगी। यद्यपि वनों से इनका लगाव बहुत पुराना है। आज भी ये वृक्ष की पूजा करते हैं तथापि जीवन-यापन हेतु इसे उन्हें काटना पड़ता है। इनका प्रबंध सरकार को उन्हीं के हाथों को सौंप देना चाहिए परन्तु समुचित विकास के बाद। आज का मानव यदि जीवित है तो वनों के माध्यम से, वनों की कृपा से। मानव की हर समस्या का समाधान करीब-करीब वृक्षों द्वारा ही होता है जो वनों की देन है। वनों का वास्तविक प्रबंध मानव के ऊपर ही निर्भर करता है। वनों से बहुत से धंधे चलते हैं। इनका कार्यभार या प्रबंध उन्हीं लोगों को सौंपा जाना जरूरी है जो इस धंधे में लगे हैं।

टसर किस्म का रेशम वनों द्वारा प्राप्त होता है। शहद की मक्खियों द्वारा शहद भी वनों से मिलता है। रबर उद्योग, दिया-सलाई उद्योग, बीड़ी उद्योग या और भी अन्य छोटे-छोटे कुटीर उद्योग वनों पर ही आश्रित हैं। वनों द्वारा ही समुचित वर्षा होती है। भारत चूंकि पूर्णतः वनों पर ही आधारित है इसलिए भी भारत में एक तिहाई भाग में वनों का रहना अत्यन्त लाभदायक होगा। पशुओं तथा वन्य जीवों का संबंध भी वनों से जुड़ा है। घने वनों में वन्य जीवों की बहुलता होती है। पशुओं, पक्षियों तथा वन्य जीवों की अधिकता से ही प्रकृति के भरे-पूरे होने का बोध होता है तथा वनों से पर्यावरण भी प्रदूषित होने से बचता है। आज प्रायः ठेकेदारों द्वारा ही वनों की अधिक कटाई होती है। वे जितना ठेका लेते हैं उनसे ज्यादा पेड़ काट कर वनों का नाश करते हैं। इस क्रम में वे यह ध्यान नहीं रखते कि इससे आगामी कल में क्या प्रभाव पड़ेगा। इसलिए यह आवश्यक है कि वनों का प्रबंध सही तरीके से हो। इसके लिए हमें वनों को इस तरीके से विकसित करना होगा कि लोगों को इससे आजीविका कमाने का मौका भी मिले और पेड़ भी सुरक्षित रहें। वनों के प्रबंध के लिए यह भी जरूरी है कि प्राकृतिक और पुराने वनों को न काटा जाय और अन्य नए पेड़ लगाये जाएं।

वनों के परिरक्षण के लिए सर्वमान्य हल हो सकता है कि लोगों में इस बात की भावना जागृत की जाय कि वन उनका सहयोगी है। उनको सहयोग वह जीवन के हर पल में देता रहता है। इसको कार्यरूप देते हेतु एक समिति बनाई जाए जो इसकी देखभाल करेगी। महाविद्यालयों में भी वानिकी और वनों के परिरक्षण से सम्बद्ध शिक्षा की व्यवस्था की जाए ताकि देश की भावी पीढ़ी में यह भावना पनपे और वे वनों के संरक्षण की जिम्मेदारी को पूरा कर सकें। भारतीय वनों में अनेक ऐसे वन्य जीव निवास करते हैं जो मानव के परम मित्र होते हैं। उनको जीवित रखने तथा उनके फलने-फूलने के लिए भी वनों का फैलाया जाना बहुत जरूरी है। प्रायः बहुत से पुरातन वनों का जाल पर्वतों के प्रांगण में देखने को मिलता है। उन पहाड़ों से जब सरकार खनन कार्य शुरू कराकर पत्थर निकालती है

तो वनों का विनाश स्वतः बड़ी आसानी से हो जाता है । इसके लिए यह भी आवश्यक है कि औसत वनों से लदे पर्वतों में खनन कार्य आरम्भ करने की अनुमति सरकार द्वारा न दी जाए और उनको यथावत फलने-फूलने के लिए छोड़ दिया जाए । इससे दो फायदे होंगे :-

1. वनों का विनाश नहीं होगा और इससे छोटे-छोटे उद्योगों को कच्चा माल प्राप्त होगा ।
2. वन्य जीवों का विनाश भी रुक जाएगा । वे भी अपना जीवन सही ढंग से बिताएंगे । वनों का परिरक्षण आज के युग में बहुत अधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है । वन ही मानव को अनेक कष्टों से भी समय-समय पर उबारते हैं ।

वनों के माध्यम से ही कृषि हेतु उपयोगी तत्व प्राप्त होते रहते हैं । विश्व में भारत ही एक ऐसा भाग्यशाली देश है जिसके अन्तर्गत वनों को ऐतिहासिक और धार्मिक दृष्टि से महत्व दिया जाता है । मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम ने भी वनवास के दौरान अनुज लक्ष्मण और सीता के साथ पंचवटी में वनों में अपनी कुटिया का निर्माण किया था । बहुत से ऐसे धर्मात्मा हुए जिनको ज्ञान वनों में ही प्राप्त हुआ । वनों ने समय-समय पर हमारे लिए संजीवनी बूटी जुटाने का कार्य भी कर दिखाया है ।

यदि वनों को फलने-फूलने का मौका मिलेगा तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं कि हमारा आगामी कल प्रदूषण मुक्त होगा । हमारे देश में पर्याप्त वर्षा होगी और हम धन-धान्य से परिपूर्ण होंगे । वनों के प्रबन्ध और इनके परिरक्षण द्वारा ही भारत को विश्व के विकसित देशों की श्रेणी में जाने का अवसर मिलेगा । वन ही हमारी सभ्यता और संस्कृति की पहचान है जो प्रकृति से हमें प्राप्त हुई है । इसको हर हालत में बचाकर रखना और अनेक प्रकार के फायदे उठाना इसके भविष्य को और उज्ज्वल बनाना ही हमारी सबसे प्रमुख प्राथमिकता होनी चाहिए । सरकार को इसके परिरक्षण और प्रबन्ध के लिए और ध्यान देने की जरूरत है । इस प्रकार वनों को परिरक्षण हमारी उज्ज्वल भविष्य की द्योतक है ।

ग्राम : मालिन,
पत्रा : बड़ादिग्घी
जिला : साहिबगंज,
बिहार-816101

वृक्ष

□ डॉ० मेहता नगेन्द्र सिंह □

मैं,
वृक्ष हूं
मानव से पहले, इस धरती पर आया
आकर, प्रकृति का आंचल बना
तब कहीं, मानव को मन से भाया
समूह में उगा, जंगल कहलाया
पर्वत पर खड़ा, बादल बरसाया
पर्यावरण का सन्तुलन, मेरे हाथों में रहा
मगर जब-तब धीमा-धीमा
मेरा निवर्सन मानव के हाथों रहा
अब तो, तेजी से कटने लगा हूं,
उसी तरह
जैसे, मानव से मानव अलग हटने लगा है
आकाश भी दो भागों में बंटने लगा है
स्वच्छ और दूषित
हृदय की तरह
शान्त और कलुषित
मर्यादा की तरह
कलंकित और आभूषित
इसीलिए, हे मानव
मुझे मत काटो
काटकर, स्वच्छ पर्यावरण को
दूषित खण्डों में, मत बांटो
मुझे काटने के पहले
कभी यह भी सोचा है,
कि मरने के बाद तेरी चिता किससे सजेगी
तेरी चिता किससे सजेगी
दफनाने का ताबूत किससे बनेगा
किस आग में तुम जलोगे
जलकर, पंचतत्व में मिलोगे
महायात्रा के पहले
जब, राह चलते-चलते थक जाओगे
जीवन सफर में अकेले हो जाओगे
किसकी छाया में बैठकर
किससे अपनी व्यथा-कथा कहोगे
जरा सोचा,
मैं साधारण वृक्ष और तुम मानव
फिर आज बने क्यों मेरे हित दानव
मैं ही तुझे, शुद्ध वायु देता हूं
जीने की खातिर, लम्बी आयु देता हूं,
मुझ वृक्ष से
तुम्हें और क्या चाहिए
मुझे तो,
सिर्फ तुम्हारा प्यार और संरक्षण चाहिए ।

उप-निदेशक (उद्योग एवं खनिज)
बिहार राज्य योजना परिषद्,
निर्माण भवन, पटना-800 001.

कहानी

धरती-आकाश के ओर-छोर

□ आशारानी व्होरा □

इस राह से कई बार गुजरी हूं। पर ऐसा अनुभव दूसरी बार ही हुआ है। मुझे इस तरफ आए भी तो एक अरसा गुजर गया था, तो इस दृश्य के दुहराव ने सहसा मन के तार खींच दिए।

तनाव बढ़े, इसके पहले ही मैंने खिड़की की ओर सिर घुमा दिया–नहीं जानती, ताजी हवा का झोंका पाने के लिए या कि बाहर का नज़ारा देखने के लिए–

अब फिर क्या हुआ ?

ट्रेन रुकती है तो मैं खिड़की से सिर बाहर निकाल कर देखती हूं।

फिर वही दृश्य, जो एक फर्लांग पूर्व देखा था। लगभग तीन दर्जन स्त्रियों के एक हजूम ने ट्रेन की खिड़कियों से अटकाए अपने लकड़ियों के गठ्ठर निकाले और अपने-अपने सिर पर रखते हुए टेकरियों से नीचे उतर गईं।

स्टेशन के समीप यह उनका दूसरा स्टॉप था।

गाड़ी धीरे-धीरे खिसकी और उसी तरह झटका खाकर फिर रुक गई।

यह उनका तीसरा स्टॉप है।

"लगभग रोज ही ऐसा होता है", बगल की आवाज सुनकर मैं फिर खिड़की से बाहर झांकती हूं तो देखती हूं कि इस तीसरी खेप में शेष रही सभी लकड़ी वालियां अपने-अपने गठ्ठरों के साथ अपने गंतव्य को निकल गई थीं।

ट्रेन चौथी बार रुकी तो स्टेशन सामने था। इस बार केवल यात्री ही उतरे। गठ्ठरवाला कोई सिर नजर नहीं आया।

इसका अर्थ था, वे सभी स्त्रियां स्टेशन आने से पूर्व ही उतर लीं। वह भी अपनी-अपनी सुविधानुसार स्वयं ही अपने घर के समीप से समीपतम स्टॉप बना कर और हर बार जंजीर खींच, ट्रेन रोक कर।

गजब का साहस और आत्मविश्वास ही नहीं, गजब का दुस्साहस भी।

वे श्रमिक महिलाएं न तो किसी सुविधा के लिए किसी की मोहताज थीं, न उनके चेहरे पर गिड़गिड़ाहट के लिए प्रस्तुत कोई दीन भाव ही था।

अजमेर-खंडवा के बीच की छोटी लाइन। बड़वाह से खंडवा के बीच अंतरा, सिर्री, अंजनी आदि कई गांव-स्टेशनों से झुंड के झुंड ये आदिवासी महिलाएं गाड़ी में सवार हुई थीं। पुरुष इक्का-दुक्का ही दिखाई दिए। अधिकांश अकेली थीं या अपने किशोर बच्चों के साथ, जो अपना-अपना अलग गठ्ठर लिए थे। सभी गठ्ठरों को करीने से बांध, उनके बीच मुड़े सिरे वाली लोहे की मोटी सलाख फंसा दी गई थी। इस सलाख की हुक रेलगाड़ी की खिड़कियों में लगी सलाखों से अटका दी जाती। इस प्रकार खिड़कियों से बाहर समानान्तर दो लंबी रेखाओं में अटके सैकड़ों गठ्ठर बाहर हवा में उड़ते हुए यात्रा करते। उन्हें ढोने वालियां खाली हाथ गाड़ी के भीतर बैठकर जातीं।

जंगल से जलाऊ लकड़ी काट कर खंडवा नगर में बेचने के लिए ये सभी गठ्ठर लाए जाते हैं। हर रोज दोनों पारियों में इन परिचित चेहरों को देखा जा सकता है। सिर्री गांव से बड़ी संख्या में झुंड के झुंड ये महिलाएं चढ़ीं और बतियातीं, शोर मचाती हुई डिब्बे में इधर-उधर फैल गईं। इनमें से एक अच्छे खाते-पीते घर की दिखती अधेड़ महिला सजी-धजी, माथे से पलकों तक छोटा घूंघट काढ़े, मेरे पास आकर बैठ गई। मैं कभी उसकी ओर देखती, कभी हाथ के अखबार की ओर, जिसमें जंगलों की इस अवैध कटाई के बारे में एक विवरण छपा है।

अब मैं घूमकर उससे बात करने लगती हूं–"आप क्या रोज इस गाड़ी से लकड़ियां लेकर जाती हैं ?"

रोज एक बार नहीं, दो बार। दूसरी बार रात के आठ बजे की गाड़ी से लौटती हूं। पर आजकल ये सुसरी गाड़ियां तो रोज लेट होवै हैं। कभी घंटा, तो कभी चार-चार घंटा। अब तुम जानो, रात चार घंटा गाड़ी लेट हुई जाए तो रात स्टेशन पर काटनी पड़े कि नाहीं ? इकली औरत, रात के बारह-एक बजे घर कैसे लौटे ?

"तो जंगल में घूमते और लकड़ी काटते-बटोरते क्या डर नहीं लगता ?"

"नाहीं। हम इकली ना रहवैं। दस-बीस बाई साथ-साथ बिचरै हैं। कोई की मजाल है कि हाथ लगाए।"

"लकड़ी काटने के लिए ठेकेदार मना नहीं करते ?"

"हम का इमारती लकड़ी काटै हैं कि मना करें ? जंगल की जलाऊ लकड़ी ठेकेदार की नाहिं, सरकार की है ।"

"तो सरकार क्या ऐसे काटने देती है ? वहां कोई रखवाला तो होता ही होगा, क्या वह मना नहीं करता ?"

"होता है । मना करता है । पर गीली लकड़ी काटैं तो । जलावे की लकड़ी की हमका चिट्ठी मिलत रही । जै देखो ।" उसने गर्व से सिर ऊंचा कर लिया ।

मैं चिट्ठी को खोलकर देखती हूं–

"लेकिन यह चिट्ठी (लाइसेंस) तो आपको घर में जलाने भर के लिए लकड़ी काटने की छूट देती है । फिर आप बेचने के लिए इतने गठ्ठर रोज कैसे लाती हैं ? कोई पकड़ता नहीं ?"

"नाहीं । हम दस-बीस बाई इकट्ठी होती हैं । कोई पकड़ के देखै तो ।... फिर एक लकड़ी एक जागाह थोड़े ही मिले ? सभी बाई लोगन को लकड़ी चाहिए, तो रोज-रोज एक जागाह कैसे मिलत रहै ? जै पापी पेट की खातिर हम लोगन को तो तीन-तीन मील घूम कर लकड़ी काटनी पड़े है । सभी जगह वह हमारे पीछे कैसे भागैगो ?" उसने लापरवाही से सिर को एक ओर झटका दिया ।

"तो आपने उनके लिए कुछ महीना बांध रखा होगा ?"

"नाहीं कच्छु नहिं । वह तो..." उसके चेहरे से साफ लग रहा था कि कुछ छिपा रही है ।

"और इस रेलगाड़ी में जो रोज-रोज आती-जाती हो, उसके लिए क्या महीने का पास बनवा रखा है ?"

"अरे नाहीं । लकड़ी वालियों का कोई टिकस नहीं लगता ।"

"इसका मतलब है, आपने रेलगाड़ी वालों से भी कुछ-कुछ जुगत भिड़ा रखी है... नाहीं ?" कहते हुए मैंने उसके चेहरे के भाव पढ़ने के लिए आंखें उसकी आंखों में गड़ा दीं ।

एक क्षण के लिए उसकी नजरें झुकीं, दूसरे ही क्षण उनमें निडरता और लापरवाही का वही भाव तिर आया, "काहे की जुगत । मैं बोली न लकड़ी वालियों का कोई टिकस नहीं लगता । फिर हमारा तो आदमी बी रेलवाई में है ।"

बात कुछ समझ में आ रही थी । अखबार में छपे विवरण की कुछ पुष्टि भी हो रही थी । लेकिन मैं उस लकड़ी वाली के निडर हाव-भाव और बातचीत के ताव-तेवर देखकर अवाक् थी । कहूं, मंत्रमुग्ध-सी थी कि ये वे ही श्रमिक महिलाएं हैं, जिनकी दीनता और दयनीयता के बारे में रोज पढ़ने-सुनने को मिलता है ।

अच्छा लगा, यह सोचकर कि युग करवट ले रहा है । इन लोगों में आत्मविश्वास जग रहा है । श्रम के साथ साहस जुड़ रहा है, तो खुशहाली भी आएगी ही । मैं उनके कपड़े, जेवर और चेहरे देखने लगती हूं जो उनकी खुशहाली का सबूत दे रहे हैं । कपड़े जंगल की धूल से मैले हैं, पर सस्ते नहीं । जेवर, गिलट से चांदी में बदल गए हैं । कहीं नथ में, कहीं बोरला में, कहीं चूड़ियों में, सोना भी आ मिला है । चेहरे भी तो खूब श्रम के साथ अच्छी खुराक के मेल से क्या स्वस्थ, बेफ़िक्र से दिख रहे हैं ।

हां, यह सब सोच कर अच्छा लग रहा है कि इनका दैन्य कटा । पर... मेरी चिंतन-धारा एक झटके से अब दूसरी ओर मुड़ लेती है..." यह साहस है या दुस्साहस ?... वक्त ने इनके भीतर अधिकार-चेतना तो क्या खूब जगा दी है, लेकिन... इस चेतना के साथ कोई दायित्व-बोध क्यों नहीं है ?

मैं बेचैन हो उठी हूं...

...श्रम के साथ खुशहाली आए, इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है ।... लेकिन खुशहाली को ईमानदारी और श्रम के साथ जोड़ने का प्रशिक्षण इन लोगों को कब, कहां दिया गया ?... तो क्या श्रम को खुशहाली के साथ जोड़ने के ये ही उपाय बचे हैं ?... इन भोली-भाली स्त्रियों को यह सब किसने सिखाया ?

अपनी बेचैनी लिए-लिए ही मैं अपने गंतव्य पर उतर पड़ी हूं ।

कुली से, तांगे वाले से, संबंधियों से पूछती हूं । कहीं से कोई सही उत्तर नहीं मिलता, "अरे बाई आप काहे को सिर खपाती हैं इसमें ? यह तो इनका रोज का धंधा है ।" एक लापरवाह उत्तर ।

"...ऊपर से नीचे तक साले सब मिले रहते हैं । किसको, किसकी फ़िकर है, सिवाय अपने ?" एक सच्ची, किंतु तटस्थ प्रतिक्रिया ।

"हां, धर-पकड़ भी होती है कभी-कभी, पर केवल दिखाने के लिए । फिर सब कुछ वैसे ही चलने लगता है ।" एक बुझा स्वर ।

"डर ! अरे, आजकल कौन, किससे डरता है ?" एक ठहाका ।

"लेकिन, ऐसे कैसे चलेगा ? इस देश का क्या होगा ?" मेरी बेचैनी सिर उठाने लगी है ।

"देश !" एक विद्रूप हंसी ।

पर प्रश्न वहीं टंगा है मेरा ।

अपने ढंग से उत्तर देता है, पतली-पतली लकड़ियों के छोटे-छोटे गट्ठर संभाले खंडवा नगर के लकड़ी-बाजार में मिला, चार किशोरियों और दो किशोरों का एक नया उभरता छोटा सा श्रमिक समूह..."बाई जी, हम तो पैदल जाकर आसपास के जंगल से ही लकड़ी लाते हैं । रेल-भाड़ा दे सकेंगे, तभी दूर जाएंगे । हमें यह सब अच्छा नहीं लगता, रोज-रोज की धर-पकड़, बेइज्जती और बदनामी ! कम खाएंगे, पर अपनी मेहनत की खाएंगे, बेईमानी की नहीं ।"

बाजार से लौटते शाम उतर आई है । मेरी निगाह सामने क्षितिज पर टंग गई है, जहां उतरती कालिमा में डूबता सूरज अपनी लाली बिखेर कर नई सुबह का संकेत दे रहा है । नया सुखद संकेत... "मेहनत की खाएंगे"... टंगे प्रश्न का एक समुचित उत्तर । पर, बेचैनी फिर अपनी जगह लौट आई है... "यह तो इनके व्यक्तिगत प्रश्न का व्यक्तिगत उत्तर हुआ न ?"

"नहीं, यह प्रश्न व्यक्तिगत नहीं है । व्यक्तिगत चरित्र ही क्या देश का चरित्र निर्धारित नहीं करता ?" साथ चलती बहन टोक देती हैं ।

"लेकिन जंगलों की अंधाधुंध अवैध कटाई और पर्यावरण का प्रश्न... नित बदलते और बिगड़ते मौसम का प्रश्न ? वह तो अभी भी क्षितिज के आर-पार अटका है । इस सारी बातचीत में कहीं ओर-छोर मिला उसका ?"

"कटाई का संबंध नीतियों से है, अवैध का चरित्र से । नीतियां सही बनें और राष्ट्रीय चरित्र इन छोटी-छोटी बातों से निखर उठे, तो फिर चिंता किस बात की ?... बल्कि मैं तो कहूंगी कि मूल बात चरित्र की ही है । यह हो सके तो मूल्य आधारित नीतियां ही नहीं होंगी, उनका क्रियान्वयन नए मूल्यों की सृष्टि भी करेगा ।" बहन जैसे एक छोर पकड़ा देती हैं मुझे ।

"और मुझे लगता है, क्षितिज के आर-पार टंगा प्रश्न क्षितिज में ही उत्तर की तलाश कर रहा है । जब यह तलाश पूरी हो जाएगी, उत्तर नीचे भी उतरेगा ही । समय उसे राह दे रहा है ।" मैं उस छोर को पकड़ लेती हूं ।

"हां, अब मिला न ओर-छोर ! वास्तव में समय को हमें नहीं, हमें राह देनी है समय को । क्या ऐसा नहीं समझतीं तुम ?" बहन फिर एक प्रश्न दाग देती हैं मुझ पर ।

"हां, क्षितिज के आर-पार भी समय और हम हैं, प्रश्न के ओर-छोर पर भी । तुम ठीक कहती हो ।"

अरे, बात कहां से कहां पहुंच गई । लकड़ी वालियों से शुरू होकर हम तक... नहीं हम सब तक । क्षितिज के किनारे और प्रश्नों के ओर-छोर ऐसे ही मिलते हैं शायद ।

जी-320, सेक्टर-22,
नोएडा-201 301

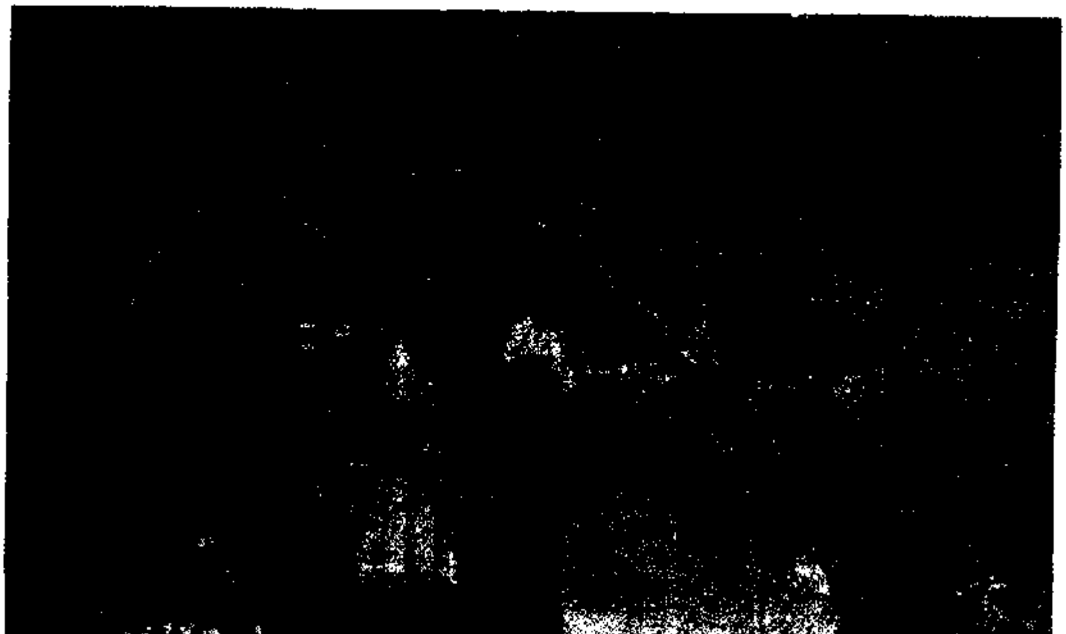

सामाजिक वानिकी

□ विनय जोशी □

सामाजिक वानिकी का हमारे समाज के साथ कितना, कैसा व क्या सम्बन्ध है ? क्या वानिकी से हमारा समाज प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है ? क्या इसके घटने या बढ़ने से हमारे समाज पर सीधे हानिकारक या लाभदायक असर पड़ता है ? यदि हां तो कैसे ? इन्हीं सब प्रश्नों का उत्तर यदि थोड़े ही शब्दों में देना हो तो वह इस प्रकार दिया जा सकता है, ''वानिकी मनुष्य और अतिशक्तिशाली प्राकृतिक संसाधनों जैसे वायु, जल व आकाश के बीच सेतु का कार्य करते हैं तो कोई अतिश्योक्ति न होगी ।''

ज्यों-ज्यों मानव का विकास हुआ त्यों-त्यों उसे रहने, खाने-पीने व तन ढकने के लिये विभिन्न पदार्थों की आवश्यकता पड़ी वह हैरान रह गया यह जानकर कि इन सभी आवश्यकताओं के लिये उसे पेड़-पौधों की ही आवश्यकता है । इसलिये इनके साथ मानव का नाता अभिन्न हो गया । खेती करना, पेड़ लगाना व उनकी रक्षा करना उसका अनिवार्य अंग हो गये । अभी तक वह पेड़-पौधों को अपना मित्र-सखा व केवल पदार्थों का प्रदाता ही मानता था परन्तु जब वह और विकसित और सजग हुआ तो वह हैरान रह गया कि पेड़-पौधों में तो उसका जीवन है । जीवन के लिये हर पल ले रहे सांस के लिये स्वच्छ ऑक्सीजन उसे पेड़-पौधों के कारण ही उपलब्ध हो पा रही है । पेड़-पौधों में ही तो उसके प्राण विद्यमान हैं । इसलिये वह अपने जीवन के स्थायित्व को पेड़-पौधों के स्थायित्व के रूप में देखने लगा जो वास्तविकता भी है । इसकी जागरूकता का अनूठा उदाहरण कुछ वर्ष पहले उत्तर प्रदेश में पौड़ी गढ़वाल के एक गांव में देखने को मिला ।

हुआ यूंकि, इमारती लकड़ी बेचकर अधिक लाभ कमाने के लालच में एक ठेकेदार ने उस गांव की ओर रुख कर लिया । उस गांव में इमारती लक्ड़ी की भरमार थी । ठेकेदार के आदमी उस समय गांव में आते जब गांव के अधिक लोग गांव में नहीं होते । ठेकेदार के आदमी आसानी से गांव के वनों से पेड़ काट-काट कर बेचने के लिये ले जाते । कुछ ही समय बाद की बात है गांव की एक नवयुवती गोरा देवी ने उन्हें देख लिया । बस फिर क्या था उसने अपनी सहेलियों को बुलाया और उन सबने मिलकर ठेकेदार के सभी आदमियों को मार भगाया । उस समय गांव में एक भी पुरुष उपस्थित न था । बल्कि 21 स्त्रियों व 6 युवतियों ने लालची ठेकेदार की दाल न गलने दी । उसके बाद उत्तर प्रदेश के समाज सेवी नेता श्री सुन्दर लाल बहुगुणा व श्री भट्ट जी ने ''चिपको आन्दोलन'' चलाया तथा सम्पूर्ण प्रदेश के वनों को बचा लिया । वहां के बच्चे आज भी लोकगीतों के रूप में ये कथन कहते सुने जा सकते हैं :–

मैं कई पीढ़ियों और जमाने से खड़ा हूं
मैं ही सुहावना मौसम हूं,
मैं ही बहार हूं, मैं ही वर्षा लाता हूं,
मुझे उजाड़ो नहीं, खुद उजड़ जाओगे ।

जहां वृक्ष बर्बाद किये जाते हैं वहां धूल एवं आंधी आती है, पहाड़ियां नंगी हो जाती हैं, झरने सूख जाते हैं और पानी यदि नहीं मिलेगा तो बहारें रूठ जाती हैं । जीवन मृतप्राय हो जाता है ।

उत्तर प्रदेश में ही पिछले वर्ष अचानक एक घटना घटी जिसकी ओर वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित हुआ । एक दिन अचानक कुछ मील लम्बी भूमि का भाग उठना प्रारम्भ हो गया । परन्तु वह भाग बहुत ऊंचा नहीं उठा । वहां के स्थानीय लोगों का मत था कि ये इसलिये हुआ है कि प्रदेश के लिये बिजली व पानी उपलब्ध करवाने के लिये सरकार ने टिहरी बांध परियोजना के लिये जो वन क्षेत्र साफ किया ये उसी कारण हुआ है । हालांकि परियोजना के मुख्य अभियन्ता का मत है कि यह पृथ्वी के गर्भ में स्वतः होने वाले परिवर्तनों का परिणाम है ।

उपरोक्त घटना का कारण यद्यपि अभी स्पष्ट नहीं है तो भी इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि वनों की कटाई के कारण प्राकृतिक सन्तुलन तो बिगड़ेगा ही और फिर उस असन्तुलन के कारण होने वाली विभीषिकाओं का सामना कर पाना असम्भव नहीं तो अति कष्टदायक अवश्य हो जायेगा ।

वृक्षों द्वारा जीवनशक्ति कैसे प्राप्त होती है

धरती पर जीवन मुख्य तौर पर सूर्य, जल व पौधों से प्राप्त

होता है । जैव पदार्थों को जीवित रखने के लिये ऊर्जा की आवश्यकता होती है । हमारे लिये ऊर्जा का मुख्य स्रोत सूर्य है । सूर्य की ऊर्जा धरती पर वृक्षों (वनस्पतियों) के द्वारा प्राप्त होती है । इसका वर्षा-चक्र इस प्रकार कार्य करता है : सूर्य की गर्मी हवा को गर्म करती है व हवा समुद्र, नदियों, नालों, सरोवरों आदि के पानी को भाप के रूप में अपने साथ उड़ा ले जाती है । वह धीरे-धीरे बादलों के रूप में ऊपर उठते हैं । हवा में पानी की इसी मात्रा को "आर्द्रता" कहते हैं । यदि हवा में पानी की यह मात्रा बहुत बढ़ जाये अर्थात् आर्द्रता 100% हो जाये तो वायु पानी को सम्भाल नहीं पाती और वह पानी वर्षा का रूप लेकर बरसने लग जाता है । वही वर्षा हमारे खेतों में बरसती है जिसे पेड़-पौधे अपनी जड़ों के द्वारा खींच लेते हैं । यही वर्षा का पानी वायुमण्डल में उपस्थित विभिन्न गैसों जैसे नाइट्रोजन, सल्फर डाई ऑक्साइड आदि को अपने साथ पृथ्वी पर ले आता है । पानी में ये गैसें घुल जाती हैं तथा पृथ्वी पर उपस्थित दूसरे कई पदार्थों के साथ मिलकर ये ऐसी खाद बनाते हैं जिन्हें पेड़-पौधे स्वयं ही अपनी जड़ों के द्वारा प्राप्त कर लेते हैं और ऊपर तने तक भेज देते हैं जो पौधों के लिये स्टोर का काम करते हैं । सूर्य की रोशनी में यही पेड़ की पत्तियां अपना भोजन तैयार कर लेती हैं । सूर्य की रोशनी प्राप्त करने की इस विधि को वैज्ञानिक भाषा में प्रकाश संश्लेषण करते हैं । इस क्रम में पत्तियों पर उपस्थित हरा पदार्थ (क्लोरोफिल) स्वयं ही शर्करा (ग्लूकोज़) में परिवर्तित हो जाता है । इसे ही साधारण भाषा में पौधों द्वारा अपना भोजन बनाना कहा जाता है । पत्तियों को पौधों का रसोईघर भी कहते हैं । पौधे इस प्रकार सम्पूर्ण रूप से फलते-फूलते हैं । तब इन पर उगे फल-सब्जियां मनुष्य को खाद्य सामग्री के रूप में उपलब्ध हो जाती हैं । कहीं ये सामग्री खाद्यान्न के रूप में तो कहीं वस्त्र के रूप में । कपास से तन ढकने के लिये कपड़ा उपलब्ध होता है । सूखे पेड़ से अविकसित गांवों व शहरों में आग जलाने का काम आज भी लिया जाता है । एक अनुमान के अनुसार केवल भारतवर्ष में ही लगभग 200 क्यूसिक्स 'डेजो' नामक लकड़ी आज भी उपलब्ध है ।

पेड़-पौधों से ऑक्सीजन

पेड़-पौधों से साधारणतया हमें ऑक्सीजन प्राप्त होती है । वास्तव में वनस्पति पृथ्वी पर ऑक्सीजन प्रदान करने वाली व मनुष्यों द्वारा छोड़ी गई कार्बन-डाइ-ऑक्साइड को हरने का एक मात्र साधन है । सूर्य से आ रही 676 किलो कैलोरी (उष्मा की इकाई) लेकर वृक्ष, पत्तों में उपस्थित क्लोरोफिल (पत्तियों का हरा पदार्थ), जड़ द्वारा लिया गया जल कार्बन-डाई-ऑक्साइड को शक्कर में बदल देता है । इस क्रिया में ऑक्सीजन स्वतः निकलती रहती है । यही ऑक्सीजन सांस लेने के काम आती है । इसी से उसका जीवन चक्र चलता है ।

भूगर्भ शास्त्रियों का कहना है कि एक हैक्टेयर के हरे-भरे जंगलों के वृक्ष 600 से 650 किलोग्राम ऑक्सीजन केवल 18 घण्टों के अन्दर ही हवा में छोड़ देते हैं । इसके बदले में वायुमण्डल से 900 किलोग्राम कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस ले लेते हैं । इसी के फलस्वरूप हमारा वायु-मण्डल साफ व स्वच्छ हो जाता है तथा हमारे सांस लेते रहने के लिये हमें ऑक्सीजन उपलब्ध होती रहती है ।

वृक्षों के पत्ते धरती पर गिरते हैं और वे इससे 'ह्यूमस' पैदा करते हैं । यह ह्यूमस हमारी धरती को पौष्टिक आहार के रूप में प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार धरती स्वतः ही और अधिक उपजाऊ बन जाती है । जो कोयला हम आज उपयोग में ला रहे हैं वह भी कई लाखों-करोड़ों वर्ष पहले धरती में पेड़ों के दबे रहने के कारण धीमी-सुलगती क्रियाओं का ही फल है ।

वृक्ष वायु में अपनी पत्तियों द्वारा जल भी छोड़ते रहते हैं । इनकी इसी जल विसर्जन क्रिया के कारण ही बहुत अधिक गर्मी में भी वृक्ष सूखते नहीं उल्टे उनके नीचे विश्राम करने वाले लोगों को ये ठण्डक भी पहुंचाते हैं । आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि पीपल का पेड़ विश्व में सर्वाधिक ऑक्सीजन देता है, उसके उपरान्त 'बड़' का वृक्ष है । शायद यही कारण होगा कि भारतीय ऋषियों ने इन्हीं दोनों पेड़ों की उपयोगिता के कारण भारतीय समाज में इनकी पूजा करवाना प्रारम्भ कर दिया हो । तुलसी का पौधा ऑक्सीजन तो देता ही है, इसके अतिरिक्त इसमें एक विशेषता यह भी है कि यह मलेरिया पैरासाइरस (कीटाणुओं) तथा मौसम परिवर्तन होने पर स्वतः उत्पन्न हो जाने वाले मानव के लिये घातक विषाणुओं को नष्ट कर देता है । मोटी इलायची एन्टी ऐलर्जिक है तो नीम की पत्तियां रक्त साफ करती हैं और जामुन शरीर में उपस्थित अधिक शक्कर को नष्ट करता है । इसीलिये डायबीटीज़ के मरीजों को चने तथा जामुन सेवन करने के लिये विशेष तौर पर कहा जाता है । एक अटूट सत्य यह है कि मूर्च्छित अवस्था में श्री लक्ष्मण जी को भी श्री हनुमान जी द्वारा लाई गई संजीवनी बूटी के द्वारा पुनः जीवन मिला । हमारा आयुर्वेद तो वनस्पति को ही मानता है जिसके द्वारा मनुष्य के सभी रोगों को दूर किया जा सकता है । यूं

भी विश्व खाद्य-शृंखला का एक बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण अंग वनस्पति है। इसीलिये मानव समाज को बनाये रखने के लिये यह एक सुरक्षा कवच ही नहीं बल्कि संजीवनी भी है।

हमारी वन सम्पदा व समाज में उसके अन्य उपयोग

अकेले भारतवर्ष में ही 750 लाख हैक्टेयर क्षेत्र वन हैं अर्थात् कुल भूमि के 22% भाग पर वनों की अनेक प्रजातियां पाई जाती हैं। आदिवासियों सहित यहां लगभग 1000 लाख लोग वनों और वनों के आसपास रहते हैं। वनों से इन्हें इनके खाने-पीने की आवश्यकताओं, जल, पशुओं के लिये चारा, ईंधन, कृषि औजारों तथा मकान बनाने के लिये इमारती लकड़ी एवं चिकित्सा के लिये जड़ी-बूटियां निःशुल्क उपलब्ध होती हैं। परन्तु अब उनकी अपनी जनसंख्या की वृद्धि के कारण, पशुधन की वृद्धि के कारण तथा बढ़ती प्रौद्योगिकी के कारण शहरों व गांवों में भी कागज बनाने, फलों आदि को पैक करने व इमारती लकड़ी की खपत के कारण वनों की लगातार कटाई हो रही है। जिसके कारण वहां के लोगों का जीवन तो अस्त-व्यस्त है ही साथ ही पर्यावरण असन्तुलन भी बढ़ रहा है।

एक सरकारी सर्वेक्षण के अनुसार 1972 से 1982 के दौरान वन क्षेत्रों में लगभग 19% की कमी आई है। उपग्रह के द्वारा लिये गये रिमोट सेंसिंग सर्वेक्षणों से भी यह तथ्य सामने आये हैं कि अब केवल 11% क्षेत्र में ही सघन वन हैं औरशेष क्षेत्र वनों से अब उतना आच्छादित नहीं रहा। वनों की द्रुत गति से की जा रही कटाई के फलस्वरूप धरती में जल को पकड़ पाने की क्षमता समाप्त होती जा रही है। वन धरती को ठोस बनाते हैं, उन्हीं के कारण धरती की ऊपरी परत हल्की नहीं होती। इसीलिये वर्षा ऋतु में जल को चूस कर अपने नीचे स्थान दे देती है जिसके कारण थोड़ी सी गहराई पर ही पीने का पानी कुओं के रूप में उपलब्ध हो जाता है। परन्तु वनों की कटाई के कारण वहां की धरती को ही पानी अपने साथ बहा ले जाता है। इसीलिये सूखे तक की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जनसंख्या वृद्धि के कारण वन क्षेत्र की कटाई करनी पड़ी फिर शीघ्र ही वन कटाई की विभीषिका को देखकर लोगों में जागरूकता आ गई।

भारत सरकार ने इस समस्या को समझ-बूझ लिया व विशेष अधिनियम द्वारा इस योजना को कार्यान्वित किया। उसके अनुसार वर्ष 1950 से 1984 तक कुल वन्यारोपण 820 लाख हैक्टेयर हुआ। 1985 के बाद पहले तीन वर्षों में 50 लाख हैक्टेयर और 1990 से पहले अन्य 50 लाख हैक्टेयर क्षेत्र पर वन्यारोपण हो गया। इसके अतिरिक्त यदि समस्त देशवासी इस ओर दृढ़ता से ध्यान दें और "एक व्यक्ति एक पेड़" का कार्यक्रम चलायें तो बहुत शीघ्र ही भारतवर्ष की समस्त भूमि हरी भरी हो जायेगी।

जैवकीय विविधता

हमारे देश में ही वनस्पति जगत की 15,000 प्रजातियां हैं तथा पुष्पी-पौधों की भी 15,000 प्रजातियां हैं। (नोट : ये सभी आंकड़े भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन विभाग की वार्षिक रिपोर्ट द्वारा लिये गये हैं।

राष्ट्र के औद्योगिक विकास में वानिकी की सुरक्षा, स्थिरता को ही बढ़ावा नहीं दिया जा रहा बल्कि उद्योगों के चारों ओर लम्बे व ऊंचे पेड़ों की एक चौड़ी परत उनके अनुपात के रूप में आच्छादित कर दी जाती है। उदाहरण के लिये उद्योगों के चारों ओर 150 गज चौड़े रास्ते पर ऊंचे वृक्षों के जाल बिछा दिये गये हैं। इसी प्रकार कल्पाक्कम तथा दूसरे संयंत्रों के चारों ओर अब तक 15,000 पेड़ लगाये जा चुके हैं। इतना ही नहीं, आज से 30 वर्ष पहले जो पहाड़ियां पेड़ों के बिना नंगी सी लग रही थीं आज उन पर भी पेड़-पौधों का एक घना जंगल बना दिया गया है।

भारत सरकार ने पिछले दस वर्षों से वृक्षारोपण कार्यक्रम के अन्तर्गत कई टापुओं पर भी यह कार्य प्रारम्भ किया हुआ है। अभी ताजा जानकारी के अनुसार भारतीय उपग्रह ने यह सन्तोष दिलाया है कि भारत का वन्य-क्षेत्र फिर से उतना ही हो गया है जितना पहले था।

वन विविध जैव पदार्थों पर भी निर्भर करती है। इसीलिये सरकार द्वारा जैवीय विविधता को सुरक्षित रखने के लिये देश में विशेष काम किये जा रहे हैं। देश का 4% भू-भाग राष्ट्रीय पौधों तथा अभ्यारणों के रूप में घोषित कर दिया गया है। भारत के अधिकतर वन्य-जीव विभिन्न भागों में स्थित 63 राष्ट्रीय उद्यानों और 358 अभ्यारणों में पल रहे हैं। इनके अतिरिक्त 13 जीवमण्डल स्थापित किये जाने की योजना भी बना ली गई है जहां दुर्लभ जीवों को सुरक्षित रखा जायेगा व उनकी जाति को लुप्त होने से बचाया जायेगा। अब तक जो उद्यान व अभ्यारण स्थापित किये जा चुके हैं–कार्बेट पार्क, कान्हा राष्ट्रीय उद्यान, इन्द्रवती राष्ट्रीय उद्यान, रणथम्भौर उद्यान, सरस्किा उद्यान, भोलाघाट अभ्यारण, पोलामऊ बांध परियोजना, उत्तर सिमलीपल राष्ट्रीय उद्यान, बक्सा अभ्यारण, सुन्दरवन राष्ट्रीय उद्यान, मानस अभ्यारण, नामदफा राष्ट्रीय उद्यान नागार्जुन

सागर श्री प्रेलम अभ्यारण, बान्धीपुर राष्ट्रीय उद्यान, पेरियार राष्ट्रीय उद्यान व दूधवा राष्ट्रीय उद्यान हैं। ये कुल मिलाकर 16 हैं। जिनके द्वारा सन्तुलन को बनाये रखने का भरपूर प्रयास किये जाने की योजनाएं बनाई गई हैं।

मानव समाज का बढ़ना वानिकी के लिये घातक

वनों और जैव पदार्थों के अतिरिक्त मानव का क्रमिक विकास भी पर्यावरण के सन्तुलन के आड़े आता है। जहां जनसंख्या वृद्धि होती है वहीं मानव का जीवन स्तर भी बढ़ता है। आज जहां जनसंख्या वृद्धि व जीवन स्तर के सुधार का विश्लेषण किया जाता है तो पाया यही गया है कि वहीं प्रदूषण में वृद्धि हो रही है। घरों में चलाये जा रहे फ्रीज व वातानुकूलित यन्त्रों व इससे भी अधिक ग्रीन हाऊस इफैक्ट जैसे कार्बन-मोनो ऑक्साइड, सल्फर डाई ऑक्साइड व क्लोरोफ्लोरा कार्बन जैसी अति गर्म व जहरीली गैसें निकल रही हैं व लगातार हमारे इस वायुमण्डल में मिल रही हैं। हमारे इस वायुमण्डल की परिधि केवल 200 मील ऊपर तक ही है। इस वायुमण्डल की परत की रक्षा 200 मील के ऊपर "ओजोन" गैस की सतह के कारण हो पाती है और यह ओजोन की सतह हमारी पृथ्वी को आकाशीय पिण्डों के टूट कर गिरने या उल्काओं के पृथ्वी पर आने के प्रभावों आदि को रोक देती है। परन्तु "ओजोन" की यही परत कहीं टूट गई तो पृथ्वी का अपना अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है। सूर्य से निकलने वाली (अल्ट्रा वायलेट) किरणें धरती पर जैव पदार्थ को पूर्णतया नष्ट कर देंगी। इसलिये इसकी सुरक्षा अति आवश्यक है। हमारे वन क्षेत्र के तापमान को कम करके इस ओजोन परत को टूटने से बचा सकते हैं। क्या यह विडम्बना नहीं है कि विश्व भर में सर्वाधिक वर्षा का क्षेत्र 'चेरापूंजी' अब पानी के लिये तरस रहा है। ये सब वनों की कटाई तथा पृथ्वी की भौगोलिक स्थिति में परिवर्तन के कारण ही हैं। पृथ्वी की गति तो हमारे हाथ में नहीं है परन्तु वनों को बनाना व बचाना तो हमारे हाथ में सुरक्षित है। हम उन्हें बचाकर अपने समाज का भविष्य बना सकते हैं।

इसीलिये आज आवश्यकता है अपनी वानिकी को सुरक्षित रखने की। जहां सरकारी व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व के सभी बुद्धिजीवी लोग इस समस्या से जूझ रहे हैं वहीं हमारा आपका भी यह कर्त्तव्य बन जाता है कि हम भी व्यक्तिगत तौर पर इस कठिनतम संकट को दूर करने की दिशा में कुछ कदम उठायें ताकि सामाजिक तौर पर भी हम भविष्य के लिये कुछ बचाकर रख सकें। गांवों की सभ्यता को बचाना इस दिशा में विशेष प्रयास होगा। हमें ये प्रण लेना चाहिये कि–

– प्रति व्यक्ति एक पेड़ लगायेंगे।

– समाज के हर अंग को वनों के प्रति शिक्षित करेंगे तभी हमारा समाज वानिकी के अटूट सम्बन्ध को एक पूंजी के रूप में सम्भाल कर रख सकता है।

एस.एस.के. सीनियर सेकेण्डरी स्कूल
दरिया गंज, नई दिल्ली-110 002.

रिओ की राय — धरती की रक्षा करो

□ डॉ० रमेश दत्त शर्मा □

यह धरती मर रही है। हम सब उसे मरता हुआ देख रहे हैं। रियो में 3 जून से 14 जून तक सम्पन्न हुए "धरती शिखर" में पहले तो इसी बात पर मारामारी होती रही कि धरती के हत्यारे कौन हैं? वे अमीर देश जो अपने ऐशोआराम के लिए धरती को तहसनहस कर रहे हैं या वे गरीब देश जो बढ़ती आबादी का पेट भरने के लिए धरती को बंजर बना रहे हैं? आखिर यही तय पाया गया कि "अरे तुम दोउ राह न पाई।" ये भी कसाई और वे भी कसाई। कोई कुल्हाड़ी चला रहा है, तो कोई स्वचालित आरियां। पर काट दोनों ही रहे हैं। कहीं जंगल चूल्हों में समा रहे हैं, तो कहीं भट्टियों और कारखानों में। जो वृक्ष प्राणदायक ताजी हवा देते, वे जलने के बाद धुंआ उगल रहे हैं। इन फेफड़ों के बिना धरती सांस कैसे ले? जब प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव ने वैदिक ऋषि का वह श्लोक रिओ में सुनाया था, जिसमें धरती पर पैर रखने से पहले ऋषि क्षमा याचना करता है कि "हे धरती माता माफ कर, मुझे तेरी छाती पर अपने पैर रखने पड़ रहे हैं" तो पता नहीं कितनों ने धरती से मन ही मन क्षमा मांगी होगी उन घोर पापों के लिए, जिनके कारण धरती की हवा, पानी और मिट्टी, सब में जहर घुला हुआ है।

रिओ में संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण कार्यक्रम की ओर से बुलाये गए इस "पर्यावरण और विकास सम्मेलन" में 178 देशों के प्रतिनिधियों के सामने यह बात भी पूरी तरह साफ हो गई कि धरती अपने ऊपर हो रहे अत्याचार चुपचाप सहन नहीं कर लेगी। धरती का पारा चढ़ रहा है। सूरज की इस बेटी का कलेजा तो दहकता ही रहता है। अब वह लावा उगल रहा है। अंडमान से पिनाटुबो तक सदियों से सोये ज्वालामुखी फूट पड़े हैं। उधर आसमान से भी आग बरस रही है। पूरी धरती एक विशालकाय गैसचैंबर में तब्दील होती जा रही है। धूप की गर्मी इस गैस-चैम्बर में कैद होकर और भी उमस बढ़ा रही है। सूखा, बाढ़, भूकंप, तूफान और बवंडर, ये सब प्राकृतिक विपदाओं के रूप में धरती अपना कोप ही प्रकट कर रही है।

पृथ्वी को बचाने के सत्ताईस सूत्र

पिछले दस हजार में धरती के साथ जो नहीं बीता, वह अब दस साल में हो जाता है। विकास की धुन में अंधाधुंध विनाश का ऐसा दुश्चक्र चल पड़ा है, जिससे बाहर निकलने की एक पुरजोर कोशिश रिओ के धरती शिखर सम्मेलन से शुरू हो रही है। धरती को बचाने का संकल्प करते हुए इसके लिए सत्ताईस सूत्र छांटे गए हैं। सबसे पहले तो टिकाऊ विकास का ऐसा रास्ता चुना जाना है, जिसके केन्द्र में मनुष्य हो। इस मनुष्य को ऐसी जिंदगी जीने का मौका मिले, जो स्वस्थ हो, सृजनात्मक हो और जिसमें प्रकृति से पूरा तादात्म्य हो।

अपनी-अपनी प्राकृतिक संपदा का दोहन सभी देश अपनी सीमाओं में रहकर करें, मगर इस तरह की प्रकृति के साथ शोषक और शोषित का रिश्ता न बने। पेड़ सड़क के आड़े आता है, तो काट दो, पर सड़क बनाने के साथ-साथ ही उसके किनारों पर पेड़ लगाते जाओ। रेल्वे लाइन बिछाते जाओ। पर दोनों किनारों पर हरियाली भी रोपते जाओ।

इस तरह विकास में जुटे लोग ही पर्यावरण संरक्षण का दायित्व निभायें और विनाश के आरोप से बचें। प्राकृतिक संपदाओं का उपयोग करते समय केवल आज की मत सोचो, कल की भी फिक्र करो।

टिकाऊ विकास के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा है, गरीबी। गरीबी का कलंक मिटाने के लिए सारी दुनिया एकजुट होकर काम करें। विकासशील देशों को दरिद्रता से मुक्ति के लिए भरपूर सहायता और समर्थन मिले ताकि वे आमदनी तो बढ़ायें, पर अपनी हरी-भरी धरती की लूट-खसोट से बचें। सभी राष्ट्रों के बीच आपसी सहयोग और सद्भाव से ही यह संभव हो सकता है कि गरीबी तो हटे, पर पर्यावरण सुरक्षित रहे।

बीमार धरती की हालत सुधारने और मरहम पट्टी करने की जिम्मेदारी भी साझे तौर पर निभानी होगी। इसके लिए अमीर देशों को धरती के दवा-दारू के इंतजाम का खर्च भी उठाना होगा और डॉक्टरी सलाह भी मुहैया करनी होगी। धरती सबकी माता है और उसका कोई भी बेटा उसकी तीमारदारी से मुंह नहीं मोड़ सकता। अमीर बेटों ने अपनी थैलिया नहीं

खोलीं तो डेढ़ पसली के गरीब बेटे कहां तक धरती की उखड़ती सांसों में नई जान फूंक पायेंगे।

विकास के लिए बेचैन तीसरी दुनिया को उत्पादन और खपत के बीच टिकाऊ संतुलन कायम करना होगा। "आमदनी अठन्नी और खर्चा रुपया" तो फिर कैसे पनपेगी टिकाऊ अर्थव्यवस्था। तीसरी दुनिया को जनसंख्या पर अंकुश लगाना होगा, ताकि धरती का बोझ न बढ़े। कभी एक सौ करोड़ ही थे पूरी पृथ्वी पर। अब साढ़े पांच सौ करोड़ तो हो गये। कहां तक कितनों को धारण करेगी, यह धरित्री।

हरे विकल्प

सबको रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य और सुख-सुविधाओं का कुछ त्याग भी करना पड़ेगा। ज्ञान-विज्ञान के अनुसंधान की गति बढ़ानी होगी। प्रदूषणकारी तकनीकों के हरे विकल्प खोजने होंगे। इन तकनीकों का आदान-प्रदान बेरोक-टोक होता रहे और स्थानीय प्रतिभाओं को भी नई सूझ-बूझ पैदा करने के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन मिले। विकास और पर्यावरण संरक्षण के तमाम कामों में जनता की सीधी हिस्सेदारी हो। हर बात सरकारी कार्यक्रम बनाकर नहीं थोपी जा सकती। हर नागरिक को यह अधिकार है जानने का कि बड़े बांध से उसे नुकसान होगा या फायदा, कि उसके शहर की हवा और पानी किस हद तक मर चुके हैं, कि उसके देश की कितनी मिट्टी पलीद हो चुकी है। पर्यावरण संबंधी सभी जानकारी सबको सुलभ कराई जाये, ताकि लोग खुद फैसले कर सकें और फैसले लेने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें।

साथ ही सभी देशों को पर्यावरण की रक्षा के लिए और प्रदूषण रोकने के लिए कानून बनाने होंगे और कड़ाई से लागू करने होंगे। बहुत बार यह देखा गया है कि उद्योग इन कानूनों की उपेक्षा करते हैं। विश्व के सभी नागरिकों को जीवन की बुनियादी सुख-सुविधाओं को मुहैया करने के ऐसे रास्ते भी हैं, जो हवा, पानी, मिट्टी और जंगल उजाड़ते नहीं हैं। धरती को बचाना है, तो इन्हीं रास्तों पर चलना होगा। हां, ये रास्ते नई खोजों पर और परंपरागत अनुभव पर आधारित होंगे। परंपरागत अनुभव तो गरीब देशों के पास भी हैं, पर नई खोजें अधिकतर विकसित देशों की ही मुट्ठी में हैं। यह मुट्ठी खुले और हरी तकनीकों का, पर्यावरण-अनुकूल प्रविधियों का उन्मुक्त प्रसार हो, यह तय पाया गया है।

इसका मतलब यह है कि धरती को बचाने के लिए जो भी प्रयास किए जाएं, उसमें खतरे में पड़े इस ग्रह के सभी राष्ट्रों और सभी पृथ्वीवासियों की भागीदारी जरूरी है। इसके लिए एक ऐसी सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था भी विश्व स्तर पर आवश्यक है, जो तीसरी दुनिया को कच्चे माल की तरह इस्तेमाल न करे।

एक दिन सुबह टहलने गया तो देखा रास्ते में एक जगह जामुन के कोई दर्जन भर पेड़ों पर पास के गांव के बच्चे जामुन तोड़ने में लगे थे। तभी वहां एक शहरी दम्पत्ति आये। उन्होंने इशारे से एक बच्चे को बुलाया और पांच का हरा नोट थमा दिया। बच्चा गया और जो जामुन इकट्ठे किये थे, एक थैली में भरकर दे गया। यानी वह बच्चा जामुन खाने से वंचित हो गया। थोड़ी देर बात एक आइसक्रीम वाला आया तो वही बच्चा उसे पांच रुपये पकड़ाकर आइसक्रीम खा रहा था।

अमीर देश अब तक तीसरी दुनिया के साथ ऐसे ही खिलवाड़ करते रहे हैं। डालर कमाने के लिए पेट भरने वाले अनाज न उगाकर, कई देश तंबाकू, गन्ना, कोको और कपास पैदा करने लगे। दूध, मक्खन और घी, खुद इस्तेमाल न करके उसे बेचने लगे। जंगल काटकर जानवरों के चरागाह बना डाले ताकि उनका मांस निर्यात करके विदेशी मुद्रा कमाई जा सके। विदेशी मुद्रा खेत मजदूर के पेट की आग तो नहीं बुझा सकती। इस गैर टिकाऊ अर्थव्यवस्था को हर स्तर पर नकारना होगा, जो पचास को निचोड़कर दो चार को मोटा करती है।

प्रदूषण की प्रतिपूर्ति

जो लोग प्रदूषण के शिकार हुए हैं, उन्हें पर्याप्त मुआवजा मिले, सुरक्षा मिले और प्रदूषण पैदा करनेवालों के खिलाफ कड़ी कारवाई हो, इस बारे में कानून बनाना भी रिओ के 27 पृथ्वी रक्षक सूत्रों में शामिल है। विकास का कोई भी ऐसा काम हाथ में न लिया जाए जिसके दूरगामी परिणाम मानव अस्तित्व के लिए संकट पैदा करते हैं। बिजली पानी की जरूरत पूरी करने के तमाम वैकल्पिक विज्ञान-सम्मत साधन हैं, जो अधिक टिकाऊ और पर्यावरण रक्षक हैं। अब सारी दुनिया ऐसे ही साधन अपनाये।

अमरीका पर पर्यावरण बिगाड़ने और धरती को मौत के कगार पर पहुंचाने की तोहमत लगाने में खुद अमरीकी स्वयंसेवी संगठन ही सबसे आगे थे। दुनिया की मात्र 20 प्रतिशत आबादी वाले पश्चिमी देशों ने धरती के 80 प्रतिशत संसाधनों के उपभोग की जो ऐशो-आराम वाली जीवन-पद्धति अपनाई है, उसकी खुलकर खिल्ली उड़ाई गई। ये धरती अमीरों के चोंचले बर्दाश्त नहीं कर सकती। वह आदमी की जरूरतें तो पूरी कर सकती है, पर लालच का पेट नहीं भर सकती।

धरती को हराभरा रखने का दस्तावेज

अंततः 800 पन्ने वाला "एजेंडा-21" पारित हो गया, जो इस धरती को हराभरा रखने के सभी उपायों का संपूर्ण दस्तावेज है। इसी के आधार पर सभी देशों ने अपनी पर्यावरण और विकास नीतियां बनाने और लागू करने की कसम खाई है। अमरीका ने भी जाते-जाते वर्षा वनों को बचाने के लिए 1650 लाख डालर की राशि उपलब्ध कराने का वचन दिया। लेकिन जिन देशों में वर्षा वन हैं, वे उन्हें बचाने के तरीके खुद तय करेंगे। जहां यह पर्यावरण सम्मेलन संपन्न हुआ, उस ब्राजील देश को करीब 4 अरब डालर की सहायता मिलने की उम्मीद है, ताकि वह अपने वन और जल स्रोत संरक्षित कर सके। यह सहायता जापान, जर्मनी और फ्रांस तथा ब्रिटेन जैसे देशों से भी मिलेगी। यह स्पष्ट हुआ कि अब अमरीका की बजाय जर्मनी, जापान और ब्रिटेन आदि देश सहायता का हाथ बढ़ाने को ज्यादा आतुर हैं।

विकासशील देशों में भारत की भूमिका सर्वोपरि रही। प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव ने स्व० राजीव गांधी द्वारा प्रस्तावित "विश्व रक्षा कोष" की याद दिलाई, जिसे व्यापक समर्थन मिला। यह कोष गरीब देशों को पर्यावरण संरक्षण के लिए आर्थिक और तकनीकी साधन मुहैया करेगा। असल में पर्यावरण संबंधी तकनीकी सामर्थ्य में भी भारत विकासशील देशों में सबसे आगे और विकसित देशों के समकक्ष है। हमारे पास अपनी हवा में ओजोन के आंकड़े हैं, जो बताते हैं कि हमारे वायुमण्डल में ओजोन की मात्रा में कोई कमी नहीं आई है। जलवायु परिवर्तन की हर करवट पर हमारे वैज्ञानिकों की निगाह है। वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के भूतपूर्व महानिदेशक डॉ. ए.पी. मित्र के नेतृत्व में वैज्ञानिकों की एक टोली जल, थल और आकाश में पल-प्रति-पल हो रहे बदलाव को दर्ज कर रही है।

हमारे स्वयंसेवी संगठनों और पर्यावरण प्रहरियों की भी दुनिया भर में धूम है। जब पर्यावरण मंत्री श्री कमल नाथ राय ने घोषणा की कि भारत में वन क्षेत्र घटने की बजाय बढ़ने लगा है, तो सबको पता चल गया कि भारत अपनी शस्य-श्यामला भारत-भूमि को किसी भी कीमत पर प्रदूषण से मैला नहीं होने देगा।

एक बच्चे का मार्मिक आह्वान

इस तरह स्टाकहोम में 20 साल पहले स्व० श्रीमती इन्दिरा गांधी ने पर्यावरण रक्षा में विकासशील देशों के नेतृत्व की जो भूमिका रेखांकित थी, उसे रिओ ने और तिरंगा कर दिया। वहां चार बच्चे भी आये थे। कनाडा की 12 साल की कैवरन सुजुकी की धरती बचाने की दलील सबने ध्यान से सुनी और बहुतों की आंखें नम हो आईं। उसने कहा था, "मैं अपने भविष्य के लिए लड़ रही हूं। मैं दुनिया भर में भूख से बिलखते उन बच्चों की आवाज बनकर आई हूं, जिनका रोना कोई नहीं सुनता। मैं उन बेजुबान जानवरों की तरफ से बोल रही हूं, जो पृथ्वी पर हर रोज दम तोड़ रहे हैं।... मैं अब बाहर धूप में जाने से डरती हूं, क्योंकि ओजोन की परत में छेद हो गया है और पराबैंगनी विकिरण हमारे ऊपर झुलसती गर्मी छोड़ रहे हैं। सांस लेते हुए मुझे डर लगता है, क्योकि मैं नहीं जानती कौन सा जहर हवा में घुला होगा। अगर आप नहीं जानते कि यह सब ठीक कैसे किया जाए, तो मेहरबानी करके इसे बिगाड़िए भी नहीं।"

प्रधान संपादक,
हिन्दी और लोक विज्ञान,
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्,
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा,
नई दिल्ली-12
(साभार पत्र सूचना कार्यालय)

वन सुरक्षा का एक अभिनव प्रयास

(स्थानीय आदिवासियों की भावनाओं को सम्मान देते हुए)

□ पी.के. मर्कप □

डूंगरपूर खेरवाडा राज्य मार्ग पर एक मात्र वन क्षेत्र रामपुर वन खण्ड है। यह डूंगरपुर से 8 किलोमीटर दूर स्थित है। पुराने समय में वर्षों पूर्व यह एक अच्छा वन क्षेत्र रहा है परन्तु समय के साथ-साथ जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती गयी इस वन क्षेत्र की सम्पदा घटती गयी। काफी प्रयास करने के बाद भी इसे रोक पाना सम्भव नहीं हो सका। इसके कई कारण हैं जैसे–इस क्षेत्र के आस-पास और कोई वन क्षेत्र नहीं है। यह क्षेत्र अधिक जनसंख्या वाले गांवों से चारों ओर से घिरा हुआ है। इस वन क्षेत्र के आस-पास लगभग 8-10 हजार की जनसंख्या निवास करती है। आस-पास के क्षेत्र में जलाऊ लकड़ी एवं पाला पत्ती का अन्य कोई स्रोत नहीं होने से इस वन क्षेत्र पर हमेशा दबाव बना रहा जिससे प्रति वर्ष इसकी सम्पदा घटती चली गई परन्तु फिर भी इतनी वन सम्पदा बची रही कि यदि उसे किसी भी प्रकार बचाकर रखा जा सके तो भविष्य में एक वरदान साबित हो सकती है।

इस दिशा में विभागीय अधिकारी एवं कर्मचारी हमेशा इस प्रयास में लगे रहे कि इसे किस प्रकार सुरक्षित रखा जाए। इस दौरान यहां तैनात वनपाल एवं वनरक्षक ने हमेशा आस-पास के लोगों से संबंध बनाये रखे। उस दौरान लगभग 2 वर्ष पूर्व पाया कि आस-पास के गांवों में प्रत्येक पक्ष की एकादशी को प्रत्येक गांव के समस्त आदमी एक निश्चित स्थान पर एकत्रित होते हैं व अपने गांव की समस्याओं के बारे में विचार विमर्श करते हैं तो स्थानीय कर्मचारियों ने भी इस ग्राम मीटिंग में जाना प्रारम्भ किया एवं ग्रामवासियों को रामपुर वन खण्ड की समस्या की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया तो रामपुर ग्राम के लोगों ने इसे भी ग्राम की महत्वपूर्ण समस्या माना एवं इस समस्या का किस प्रकार निराकरण किया जाए इस पर विचार विमर्श लगभग दो तीन एकादशी पर लगातार चलता रहा। इस दौरान कर्मचारी भी निरन्तर ग्रामवासियों से सम्पर्क बनाये रहे तथा रामपुर ग्राम एवं रामपुर वन क्षेत्र से ही लगे हुये एक अन्य ग्राम बागदरी के निवासियों से भी इसी प्रकार सम्पर्क बनाया एवं बागदरी ग्राम के लोगों से भी इस समस्या के निराकरण बाबत विचार विमर्श किया एवं वन विभाग के कर्मचारियों ने अपने प्रयास से दोनों ग्रामों की एक संयुक्त सभा पास ही के देवालय में रखी व इस समस्या से हर हालत में किस प्रकार निपटा जाय, विचार किया तो ग्राम रामपुर के श्री उदयलाल ने कहा कि दोनों ग्रामों के समस्त ग्रामवासी जंगल क्षेत्र में उपस्थित होकर वृक्ष पूजन व धरती पूजन करें एवं केसर छांट कर सौगन्ध खायें कि हम इस वन क्षेत्र की वन सम्पदा को कोई नुकसान नहीं पहुंचायेंगे, हम सब कोई पेड़ नहीं काटेंगे, हम किसी को पेड़ काटने नहीं देंगे।

इस समस्त कार्यवाही को करने में लगभग छः माह व्यतीत हो गये और वर्ष 1990 का दीपावली का त्यौहार आ गया, दीपावली के पूर्व एकादशी के दिन दोनों ही ग्रामों में वागदरी एवं रामपुर में लोग अपनी अपनी ग्रामसभा में एकत्रित हुये तो ग्राम रामपुर की सभा में वनपाल ओम प्रकाश चौरसिया एवं ग्राम वागदरी की सभा में पन्नालाल वन रक्षक उपस्थित हुये एवं पुनः इस समस्या के निराकरण के लिए पहले के निर्णय की ओर ध्यान आकृष्ट कराया तो केसर छांटने का प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित हो गया एवं लोगों ने अपना निर्णय दिया कि आज से दो दिन बाद धन तेरस (धनवन्तरि त्रयोदशी) का पर्व है जिस पर धनवान पैसेवाले पूंजीपति लोग तो अपने धन की पूजा करते हैं परन्तु अपना धन तो यही जंगल वृक्ष एवं मिट्‌टी है। हमें तो इसकी पूजा अर्चना करनी चाहिए। ठीक दो दिन बाद दोनों ग्रामों के लोग धनतेरस को वन क्षेत्र रामपुर में एकत्रित हुये। लोगों ने वृक्ष पूजन, मिट्‌टी पूजन कर केसर छांट कर शपथ ली कि हम इस जंगल को हर हालत में बचाये रखेंगे।

केसर छांटना

सामाजिक एवं धार्मिक आधार पर आदिवासी क्षेत्रों के निवासी जब कभी केसर छांट कर कोई प्रतिज्ञा करते हैं तो उसे हमेशा पूरा करने का सतत् प्रयास करते हैं।

जब लोगों ने यह प्रतिज्ञा कर ली तो वे इस पर अमल भी करने लगे तो वन विभाग के कर्मचारियों के प्रयास से एक बैठक आमंत्रित कर एक वन सुरक्षा समिति का गठन किया गया। इस सुरक्षा समिति का नाम वन विकास एवं सुरक्षा समिति

रामपुर रख गया । समिति में ग्यारह सदस्य बनाये गये ।

इस सुरक्षा समिति के गठन के पश्चात् दिनांक 25.2.91 को समिति के सदस्यों की वन चौकी रामपुर पर बैठक रखी गई । उक्त बैठक में वनपाल श्री ओमप्रकाश चौरसिया एवं पन्नालाल वनरक्षक भी सम्मिलित हुये । बैठक में समिति के कार्य कलापों के बारे में विचार विमर्श कर निम्न प्रस्ताव पारित किये गये :

वन सुरक्षा समिति का प्रबंध एवं दायित्व

1. वन सुरक्षा समिति इस क्षेत्र में पड़ने वाले वन क्षेत्रों, वृक्षारोपण क्षेत्रों की अपने सदस्यों के माध्यम से सुरक्षा करना । जैसे-क्षेत्र के अतिक्रमण, पेड़ों की कटाई छंटाई एवं आग आदि की रोकथाम की प्रभावी व्यवस्था करेगी ।
2. समिति सदस्यों का यह दायित्व होगा कि जिस क्षेत्र में वृक्षारोपण की सुरक्षा एवं प्रबंध का दायित्व सौंपा गया है उसका यदि कोई व्यक्ति अतिक्रमण कर, चोरी करके पेड़ काटकर, आग लगाकर अथवा किसी अन्य प्रकार से क्षेत्र को नुकसान पहुंचा रहा हो तो उसे तुरन्त रोकेंगे एवं उसकी सूचना वन विभाग के अधिकारियों/कर्मचारियों को देंगे ।
3. समिति एवं उनके सदस्य वनाधिकारियों को क्षेत्र को नुकसान पहुंचाने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करने में सहयोग करेंगे ।
4. किसी व्यक्ति द्वारा वन क्षेत्र को नुकसान पहुंचाने या किसी प्रकार का अपराध करने पर समिति के सदस्यों को जानकारी होते ही वे समीप के वन विभाग के अधिकारी/कर्मचारी को सूचित करेंगे व कार्यवाही में पूरा सहयोग देंगे ।

वन सुरक्षा समिति का शपथ ग्रहण समारोह

दिनांक 28.8.91 को माननीय श्री एस.के. वर्मा, प्रधान मुख्य वन संरक्षक महोदय के डूंगरपुर जिले की यात्रा के दौरान एक शपथ ग्रहण समारोह का आयोजन रखा जिसमें उनके द्वारा समिति के सदस्यों को निम्न शपथ दिलवाई :

शपथ-पत्र

हम "वन विकास एवं सुरक्षा समिति रामपुर" के सभी सदस्य ईश्वर के नाम पर शपथ ग्रहण करते हैं कि हम वन क्षेत्र रामपुर की पूरी तरह से सुरक्षा करेगे । हम इसमें किसी प्रकार का अवैध कटान नहीं करेंगें तथा न ही किसी अन्य को अवैध कटान करने देंगें । हम इसकी सुरक्षा एवं संवर्धन की पूरी जिम्मेदारी लेते हैं । इसके साथ ही हम हमारे आस-पास की भूमि पर अधिकाधिक संख्या में पेड़ लगायेंगे तथा अन्य लोगों को भी अधिकाधिक संख्या में पेड़ लगाने हेतु प्रेरित करेंगे । हम पर्यावरण संरक्षण की दिशा में हर सम्भव प्रयास करेंगे ।

वन विभाग के प्रयास

रामपुर वन खण्ड की प्राकृतिक वन सम्पदा को बचाये रखने एवं इसे और अधिक बढ़ाने की दिशा में विभाग द्वारा भी भरसक प्रयास किये गये जिसके दौरान सबसे पहले इस क्षेत्र को जवाहर रोजगार योजना अन्तर्गत लेकर इस क्षेत्र के चारों ओर की पत्थर की दीवार दुरस्त करवायी एवं इसके अन्दर खाली स्थानों पर टेन्च खुदवायी तथा जून-जुलाई माह में उस पर देशी बबूल, विलायती बबूल, खैर, नीम आदि बीजों की बुआई करवायी जिसके अच्छे परिणाम आये हैं और वन क्षेत्र लगभग 2 किलोमीटर लम्बाई के पक्के रोड के सहारे होने से रोड एवं पत्थर की दीवार के बीच की भूमि पर 4000 पौधे भी रोपित करवाये गए। इसके अतिरिक्त डूंगरपुर से खैरवाड़ा मार्ग पर 11,200 पौधे खड्डे खुदवाकर तार एवं फेन्सिंग करवाकर रोपित किये गये हैं ।

रामपुर वन चौकी के पास ही एक सोलर लाइट भी विश्व खाद्य कार्यक्रम परियोजना वन विभाग द्वारा लगायी गयी है । रामपुर वन चौकी के पास ही दो विकेन्द्रित पौध शालाओं के माध्यम से 50,000 पौधे तैयार करवाये जा रहे हैं जो स्थानीय लोगों को अपनी निजी भूमि पर लगाने हेतु उपलब्ध कराए जाऐंगे । रामपुर गांव में दिसम्बर 91 के प्रथम सप्ताह में एक बालवाड़ी एवं प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र खोला गया ।

वन खण्ड रामपुर में वर्तमान में प्राकृतिक वृक्ष जैसे कि सागवान, रोझे, बांस, खैर, गोया खैर, देशी बबूल, जल करन्जा, खिरनी व झाड़ियों के बेर इत्यादि काफी अच्छी मात्रा में मौजूद हैं । ग्रामवासियों द्वारा इस वन क्षेत्र को केसर छांट कर बचाने का प्रयास एक बहुत ही अनूठा प्रयास है । जिससे इस वन क्षेत्र के वृक्ष इत्यादि तो फूलेंगे फलेंगे ही लेकिन इस वन क्षेत्र में पाये जाने वाले पशु-पक्षी व राष्ट्रीय पक्षी मोर को भी सुरक्षित रखने का एक सतत् प्रयास है । इस वन क्षेत्र में किया गया यह प्रयास सभी वन क्षेत्रों के लिये अनुकरणीय व अनुसरणीय कार्य है ।

डिप्टी कन्जरवेटर
डूंगरपुर-314001
राजस्थान

गांवों की उन्नति में ही देश की खुशहाली

□ उत्तम भाई ह० पटेल □

स्वतंत्रता की 45वीं वर्षगांठ की पूर्व संध्या पर मैं आप सबका हार्दिक अभिनन्दन करता हूं और बधाई देता हूं। आजादी के इन 45 वर्षों में हमारे ग्रामीण भारत की तस्वीर में कितना निखार आया है, हमारे गांवों में क्या-क्या समस्याएं थीं और आज तक हम इस बारे में क्या कुछ कर पाये हैं तथा भविष्य की क्या योजनाएं हैं, इसी पर आज मैं संक्षेप में चर्चा करना चाहूंगा।

हमारी पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था कि "गांव हों उन्नत हमारे तो देश बने खुशहाल"। उन्होंने गांवों में व्याप्त गरीबी, बेरोजगारी की समस्या, पीने के पानी की समस्या, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और समाज के दूसरे पिछड़े वर्गों को न्याय की समस्या, बंधुआ मजदूरों, महिलाओं और ग्रामीण युवाओं की समस्या, रहने के लिये मकान की समस्या, पर्यावरण को बनाये रखने की समस्या आदि को गहराई से समझा था और उन्हें अपने बीस सूत्री कार्यक्रम में शामिल किया था। प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव जी के नेतृत्व में पिछले साल में ग्रामीण विकास क्षेत्र में हमने काफ़ी महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। स्थानीय स्तर पर कार्यक्रमों का नियोजन और अमल और गरीब से गरीब जनता को लागत का पूरा-पूरा फायदा देने पर बल, यह हमारी नीति रही है।

हमारा मंत्रालय गरीबी की समस्याओं से निपटने के लिये अनेक कार्यक्रम चला रहा है। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम जिसे आप आई.आर.डी.पी. के नाम से जानते हैं, हमारा सबसे बड़ा गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण गरीब परिवारों को काम करने के साधन, औजार, नकद सहायता और बैंकों से ऋण उपलब्ध कराकर उनकी मदद करना है ताकि ये लोग अपना काम करके अपने परिवार की आमदनी को इतना बढ़ा सकें कि गरीबी के चंगुल से मुक्त हो जायें। अब तक इस कार्यक्रम के अंतर्गत 400 लाख परिवारों को करीब-करीब 17,000 करोड़ रुपये की सब्सिडी एवं ऋण के रूप में सहायता दी जा चुकी है। आठवीं योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा को एक परिवार के लिये 11000 रुपये के आय-स्तर पर निर्धारित किया गया है।

हम आठवीं पंचवर्षीय योजना में आई.आर.डी.पी. में कुछ सुधार कर रहे हैं। प्रति परिवार निवेश में काफी वृद्धि की जाएगी। गरीब परिवारों को अनेक प्रकार की परिसम्पत्तियां मुहैया कराई जाएंगी। बिचौलियों को खत्म करके लाभार्थियों को दी जाने वाली सहायता का अब सीधा भुगतान उन्हीं को किया जाएगा। कारीगरों को कच्चा माल मुहैया कराया जाएगा और उनके द्वारा बनाई गई चीजों की बिक्री की व्यवस्था की जाएगी। बैंकों द्वारा ऋणों की वसूली में सुधार लाया जाएगा। कार्यक्रम के दौरान लाभार्थियों को उनके कर्त्तव्यों और अधिकारों के बारे में जानकारी देने के लिए एक विशेष अभियान चलाया जाएगा ताकि वे संगठित होकर अपनी समस्याओं को समझ सकें और उनका हल

निकाल सकें । विकास कार्यक्रमों में स्वयंसेवी संगठनों के सक्रिय सहयोग को बढ़ाया जाएगा और इसके लिए हमारे मंत्रालय के अंतर्गत कापार्ट नामक संस्था को और गतिशील बनाया जाएगा ।

हम ग्रामीण युवकों को अपना रोजगार शुरू करने के लिए ट्राइसेम कार्यक्रम के अंतर्गत प्रशिक्षण देते हैं और जब वे प्रशिक्षण पूरा कर लेते हैं, तब उन्हें काम शुरू करने के लिए औजार किटें भी मुहैया कराई जाती हैं और आई.आर.डी.पी. से उन्हें ऋण और सब्सिडी दी जाती है । इस साल करीब-करीब 3 लाख युवाओं को प्रशिक्षण देने का कार्यक्रम शुरू हो गया है । ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं तथा शिशुओं के विकास के लिये एक विशेष कार्यक्रम 1982 में शुरू किया गया था । इस कार्यक्रम के अंतर्गत अपनाई गई नीति ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब महिलाओं के समूह बनाने और उन्हें विपणन समर्थन से जुड़ी आय सृजित करने वाली गतिविधियां शुरू करने के लिये तैयार करने की है । 247 जिलों में शुरू इस कार्यक्रम में अब तक 45,000 से भी ज्यादा महिला समूह बनाए जा चुके हैं ।

देश का दूसरा बड़ा रोजगार कार्यक्रम जवाहर रोजगार योजना है, जिसे सातवीं योजना के अंतिम वर्ष अर्थात् 1989 से शुरू किया गया था । इस योजना का उद्देश्य बेरोजगार और कम रोजगार वाले लोगों को अतिरिक्त अवसर जुटाना है । साथ ही साथ गांव के लिये उत्पादक स्वरूप की परिसम्पत्तियों का निर्माण भी हो जाता है । योजना में अनुसूचित जाति, जनजाति तथा मुक्त बंधुआ मजदूरों को प्राथमिकता दी जाती है । रोजगार के 30 प्रतिशत अवसर महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए हैं । वर्ष 1992-93 के दौरान इस कार्यक्रम के लिए 2046 करोड़ रुपये रखे गए हैं जिनसे हमें आशा है कि हम लगभग 79 करोड़ रोजगार के श्रम दिन जुटा सकेंगे ।

ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब लोगों को रहने की भारी समस्या है । हमारी सरकार अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा मुक्त बंधुआ मजदूरों को निःशुल्क मकान देने के लिए इंदिरा आवास योजना चला रही है । देश के अलग-अलग राज्यों और केन्द्र शासित क्षेत्रों से मिली रिपोर्ट के अनुसार इस योजना के अंतर्गत अब तक 18 लाख से भी अधिक मकान बनाए जा चुके हैं ।

जवाहर रोजगार योजना की एक दूसरी उप-योजना के रूप में अनुसूचित जातियों, जनजातियों और मुक्त बंधुआ मजदूरों के छोटे तथा सीमांत किसानों को सिंचाई के निःशुल्क कुएं मुहैया कराए जाते हैं । इस योजना के अंतर्गत अब तक देश में 3.50 लाख से भी अधिक कुंए बनाए जा चुके हैं । हालांकि, इस योजना का उद्देश्य गांव के लोगों के लिए रोजगार जुटाना है लेकिन इस योजना में साथ ही साथ गांवों की सड़कों, पाठशालाओं, पंचायतघरों, तालाब आदि का निर्माण हो जाता है, वहां वृक्ष लगाए जाते हैं और महिला मंडलों को विशेष प्रोत्साहन दिया जाता है ।

आप लोगों को यह जानकर खुशी होगी कि ग्रामीण भारत में पीने के पानी की जरूरतों को पूरा करने के लिए सभी के लिए स्वच्छ पेयजल का सपना अब साकार होने वाला है । आज केवल 3 हजार गांवों को छोड़कर देश के सभी गांवों में स्वच्छ पेयजल का कम से कम एक जल स्रोत अवश्य उपलब्ध है । इस सफलता में राज्य सरकारों और कई अनुसंधान संस्थाओं का सक्रिय सहयोग रहा है । यह बड़े गर्व की बात है कि इस वर्ष गंभीर सूखे की स्थिति में भी हम अपने पिछले प्रयासों के कारण स्थिति पर काबू पाने में सफल रहे हैं । लेकिन पीने का पानी मुहैया करा देने से ही समस्या का हल नहीं निकलता । देश के अनेक भागों में पानी में खारापन, लौह और फ्लोराइड के तत्व जरूरत से ज्यादा मात्रा में पाये जाते हैं । वहां उस पानी को राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन के अंतर्गत चलाए जा रहे विशेष कार्यक्रमों द्वारा साफ किया जा रहा है । पेयजल के कार्यक्रम में भी अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों का काफी ध्यान रखा जा रहा है । 1990 में 11,000 हरिजन बस्तियों में पेयजल मुहैया कराने के लिए लगभग 20 करोड़ रुपये की विशेष सहायता दी गई थी । इसी

प्रकार 1991 में डॉ. भीमराव अम्बेडकर जन्म शताब्दी कार्यक्रम के अंतर्गत देश की 30,000 अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की बस्तियों में पीने के पानी की व्यवस्था के लिए 60 करोड़ रुपये दिए गए थे । जहां तक पानी में गिनी-कृमि की समस्या का संबंध है, 1983 में 40 लाख जल स्रोतों में ऐसी शिकायत थी जो आज केवल 2,000 जल स्रोतों में ही रह गई है । हमें आशा है कि हम इस बीमारी को 1993 तक जड़ से खत्म कर देंगे ।

हमारे प्रधानमंत्री माननीय श्री पी.वी. नरसिंह राव जी ने पिछले वर्ष लाल किले के प्राचीर से राष्ट्र के नाम अपने पहले संदेश में ग्रामीण कारीगरों को आधुनिक औजार देने की एक नई नीति की घोषणा की थी । इस योजना में गरीबी की रेखा से नीचे बसर करने वाले कारीगरों को औजार किटें देने का कार्यक्रम बनाया गया है जिनकी औसत कीमत 2,000 रुपये रखी गई है । औजार किट की केवल 10 प्रतिशत कीमत ही कारीगर को देनी होगी । बाकी राशि सरकार द्वारा अनुदान के रूप में दी जाएगी । यह योजना 1992-93 से देश के 50 जिलों में शुरू की जा रही है जिसमें एक लाख कारीगरों को सहायता दी जायेगी । इस वर्ष हम योजना पर 18 करोड़ रुपये खर्च करेंगे और योजना से गरीबी की रेखा से नीचे बसर कर रहे बढ़ई, लोहार, कुम्हार, शिल्पकार और चमड़े का काम करने वाले कारीगर आदि लाभ उठा सकेंगे ।

अंत में मैं, सभी ग्रामवासियों और विशेष रूप से युवकों और महिलाओं से पुनः अनुरोध करना चाहूंगा कि आप सब सरकार द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लें । गांव-गांव में छोटी-छोटी समितियां बनायें और अपनी समस्याओं को सरकार के सहयोग से हल करने का स्वयं प्रयास करें । बढ़ती हुई जनसंख्या पर अंकुश लगायें क्योंकि इसके बिना कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता । हमारे प्रधानमंत्री ग्रामीण विकास की समस्याओं से भली-भांति परिचित हैं और इनके निवारण की ओर उनका विशेष ध्यान रहता है । उन्होंने ग्रामीण विकास के लिए वित्तीय साधनों को आठवीं पंचवर्षीय योजना में 14,000 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 30,000 करोड़ रुपये कर दिया है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप सब के सहयोग से हम निश्चित रूप से ग्रामीण ढांचे में बुनियादी सुधार कर सकेंगे और उनके रहन-सहन के स्तर को उन्नत बना सकेंगे ।

गांव हमारा कैसा होगा, गांव तो गोकुल जैसा होगा ।
ऐसा कभी न देखा होगा, गांव तो हमारा वैसा होगा ॥

न कोई भूखा ना कोई प्यासा, ना कोई मंगता न भिखारी,
खायेंगे सब रोटी मेहनत की, बाघ-बकरी में होगी यारी,
सुख-दुख में सब सांझी होंगे, भेद भाव कुछ भी ना होगा,
छुआ-छूत न वहां पर होगा, एक कुंए का पानी होगा ॥

गांव हमारा कैसा होगा, गांव तो गोकुल जैसा होगा ।
ऐसा कभी न देखा होगा, गांव तो हमारा वैसा होगा ॥

(ग्रामीण विकास राज्य मंत्री श्री उत्तम भाई ह० पटेल के 14 अगस्त 1992 को आकाशवाणी से प्रसारित वार्ता के अंश)

वन सम्पदा एवं पर्यावरण

□ गदाधर भट्ट □

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

वन हमारी प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक धरोहर हैं। हमारी भारतीय संस्कृति का विकास वनों में एवं नदियों के पावन तट पर हुआ। अतः भारतीय संस्कृति को अरण्य-संस्कृति कहा जाता है। अरण्यों (वनों) में ही हमारे मंत्रदृष्टा ऋषियों ने ज्ञान के अक्षय भण्डार वैदिक मंत्रों का साक्षात्कार किया था, वेदों के अन्तिम भाग आरण्यक उपनिषद् हैं, जिनमें दर्शन एवं तत्व ज्ञान के कारण ये आरण्यक नाम से प्रसिद्ध हैं। वेद के पृथ्वी सूक्त में मातृभूमि की वन्दना के साथ वनों की महिमा का विशद् वर्णन है।

संस्कृत साहित्य में श्रेष्ठतम कवि कालिदास का प्रकृति प्रेम तथा हिन्दी साहित्य में प्रकृति बहुआयामी चित्रों का आधार भी हमारी प्राकृतिक सम्पदा वन ही है। वन सम्पदा के कारण यह भारत ज्ञान, सौन्दर्य एवं सम्पन्नता का अनूठा देश कहा जाता है।

वनों के साथ उपवन, उद्यानों की परम्परा

प्राचीन भारत में वनों के साथ उपवनों एवं उद्यानों की एक स्वस्थ परम्परा रही है। हमारे नगर निर्माता वास्तुकारों ने नगरों के विनियोजन (प्लानिंग) में उप-वनों एवं उद्यानों को समुचित स्थान दिया था, जहां ये मनोरंजन के केन्द्र होने के साथ प्रकृति सौन्दर्यानुभूति एवं पर्यावरण सन्तुलन की दिशा में महत्वपूर्ण साधन थे। रामायण, महाभारत, पुराण साहित्य कौटिल्य अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थों में इन्द्र के पारिजात प्रधान नन्दन वन से लेकर सम्राटों के उपवन, उद्यान, पुष्पवाटिका एवं सघन कुंजों तक का विशद वर्णन है। वात्स्यायन के कामसूत्रों में विलास उद्यानों के साथ पर्यावरण को संतुलित करने में वाटिका, उपवनों एवं उद्यानों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जहां पारिजात, अशोक, आम, मौलिश्री कदम्ब, शिरीज, करील, कुटज, नीम, जामुन, व पीपल आदि वृक्षों की बहुलता का उल्लेख है। संस्कृत ग्रन्थों के अनुसार प्रमद वनों एवं उपवनों में वसन्त के आगमन पर दोलोत्सव (झूला उत्सव) व मदनोत्सव आयोजित होते थे। प्राचीन भारत के पश्चात मुगलकाल एवं अंग्रेजी शासन में भी उपवनों व उद्यानों का पूर्ण विकास हुआ, यह क्रम स्वतंत्र भारत में भी जारी है। इस प्रकार भारत में आनन्द एवं मनोरंजन के साथ योजनाबद्ध रूप में हमारे वानिकी कार्यक्रम महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

वन सम्पदा का महत्व

वनस्पति से वन सम्पदा का निर्माण होता है। वृक्षों से हमारा चोली-दामन का साथ है। वृक्षों के बिना हमारे अस्तित्व की परिकल्पना भी संभव नहीं है। कनाडा के वनशास्त्री डॉ० वलादीमीर क्रजीना का कथन है "मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता श्वसन के लिए शुद्ध वायु है। वृक्ष हमारी इस आवश्यकता की संपूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करते हैं।" प्रशान्त विज्ञान सम्मेलन की एक विज्ञप्ति के अनुसार वृक्ष सम्पदा के विनाश का यदि यह क्रम चलता रहा तो एक दिन विश्व को उसके भयानक परिणाम भुगतने पड़ेंगे। यह हमारे लिए गंभीर चेतावनी है।

हमारे विचारकों ने सूर्य को चल-अचल जगत की आत्मा कहा है, वैज्ञानिक भी अनुभव करते हैं कि सूर्य पर ही हमारा जीवन निर्भर है। सूर्य की ऊष्मा से, वनों के सहयोग से भूमि की आर्द्रता एवं जलाशयों-समुद्रों का जल मेघ बनकर वर्षा के रूप में बरस कर कीटाणुओं को नष्ट करते हुए शुद्ध पर्यावरण एवं वन-सम्पदा का पोषण करता है। वृक्ष प्राणियों के लिए प्राणवायु प्राप्त करने के महत्वपूर्ण साधन हैं। भूगर्भवेत्ताओं के अनुसार एक हैक्टेयर हरीतिमा से 24 घंटे में आठ सौ से आठ सौ पिचहत्तर किलोग्राम प्राणवायु प्राप्त होती है, नीम पीपल एवं वट वृक्ष सर्वाधिक प्राणवायु (ऑक्सीजन) के साथ तुलसी का पौधा मलेरिया विषाणुओं को नष्ट करने की अद्भुत क्षमता रखता है। अतः इनको हमारी संस्कृति में देवरूप पूज्य एवं संरक्षणीय माना गया है। वर्तमान में हमारे पारिस्थितिकी सांस्कृतिक पुनर्जागरण के कार्यक्रमों में वृक्ष संरक्षण की प्राचीन स्वस्थ भारतीय परम्परा को दृढ़ बनाना आज की महती आवश्यकता है।

वन सम्पदा की आवश्यकता एवं पर्यावरण

मृदा (मिट्टी) जल, जलवायु एवं वनस्पति देश की प्राकृतिक सम्पत्ति है। इनका समग्र रूप ही पर्यावरण कहलाता है।

आकाश, पृथ्वी, जल, वनस्पति, एवं जीव ही पर्यावरण का निर्माण करते हैं। अतः हमारे ऋषियों ने आदिकाल से अपने शान्तिपाठ के मन्त्रों में पर्यावरण सन्तुलन बनाए रखने पर विशेष ध्यान दिया है। इस पर्यावरण को विज्ञानवेत्ता-प्राणी जगत में भौतिक, रासायनिक एवं जैविक परिस्थितियों का योग कहकर परिभाषित करते हैं। अनुकूल पारिस्थितिकी विज्ञान (इकोलोजी) इनका अध्ययन करता है। जहां प्रकृति विकास एवं पर्यावरण में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है, वहां विनाश की स्थिति होती है। भूमि, जल, वायु एवं ध्वनि-प्रदूषण को रोकने में वन सम्पदा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

वन सम्पदा की उपादेयता एवं जैविक प्रजाति संरक्षण

वन केवल लकड़ी उत्पादन केन्द्र नहीं है। प्राकृतिक वनों में नये औषधीय एवं खाद्य पौधे हैं–यथा गोंद राल, तैलीय, प्रजातियां एवं अन्य अनेक प्रजातियां जिनका व्यापारिक उपयोग कम हो रहा है। हमारे कतिपय पौधे विशेष औषधि गुणों के लिए लोक प्रसिद्ध हैं जैसे सर्पेन्टीन, सिनकोना, क्यूपिसताता, अगरलोपा (लोबान) चन्दन। अनेक पौधे आयुर्वेदिक औषधियों से सम्बद्ध हैं। शीशम, सागवान, चीड़, मूल्यवान लकड़ी वाले वृक्ष हैं, जिनकी उपयोगिता सदैव रही है। फर्नीचर, रेल, कागज, दियासलाई सम्बन्धी अनेक उद्योग हमारे वनों पर ही आधारित हैं। लाख, गोंद, तेंदू पत्ता, तेल, रबर, ट्यूब टायर, संबंधी उद्योग व्यवसाय वन सम्पदा पर ही विकसित हैं। चन्दन का तेल, नीम का तेल, वार्निश, रोगन, सभी वनों की उपज हैं।

वर्गीकरण-विज्ञान वन सम्पदा वनस्पति एवं पशु-पक्षियों की दस लाख से अधिक प्रजातियों का विवरण देता है। केवल हमारे देश में यह संख्या लगभग 50 हजार है। जैविक विभिन्नताओं एवं वन, वन्य प्राणी प्रजातियों के संरक्षण के लिए देश में चार प्रतिशत वन भाग राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभ्यारण्यों के विकास के लिए रखा गया है। उद्यानों एवं अभयारण्यों की संख्या लगभग चार सौ है। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध रणथम्भौर उद्यान, सरसिका, सुन्दरवन, पैरीयार उद्यान, कार्बेट पार्क, कान्हा राष्ट्रीय उद्यान हैं। हमारे संविधान (भाग 4 नीति निर्देशक तत्व 42 का संशोधन, अनुच्छेद 48) में पर्यावरण संरक्षण के साथ वन एवं वन्य जीवों की सुरक्षा के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त की गई है।

भूमि एवं वनों का सह सम्बन्ध

एक सर्वेक्षण के अनुसार हमारे देश में 32 करोड़ हैक्टेयर भूमि में से आधी भूमि अनुत्पादक हो गई है। वनों के अन्धाधुंध कट जाने से मिट्टी का कटाव एवं बहाव निरन्तर बढ़ रहा है। मिट्टी में जीवन तत्व इतना प्रबल है जो देश की वर्तमान जनसंख्या की तीन गुनी जनसंख्या तक का भरण-पोषण कर सकता है। भूमि के अत्यधिक दोहन से एवं उर्वरकों के अधिकतम उपयोग के कारण भी मिट्टी की जीवन शक्ति क्षीण होती जा रही है। अतः मिट्टी के क्षरण एवं अपरदन रोकने में वनों का विकास वरदान सिद्ध हो सकता है। वन संकुचन के कारण अपेक्षित वर्षा का अभाव बढ़ता जा रहा है, वनों के तीव्र कटाव के कारण भूमि में जल की संरक्षण क्षमता घटती जा रही है। पेयजल निरन्तर कम हो रहा है। अकाल की भीषण विभीषिका सदैव मंडराती रहती है।

वैज्ञानिक प्रगति एवं पर्यावरण

आज की उपभोक्ता संस्कृति में विज्ञान एवं तकनीकी के बढ़ते चरणों ने औद्योगिक विस्तार से हमारे लिए शुद्ध वायु का संकट उत्पन्न कर दिया है। दिन रात व्याप्त धातु तत्व, कार्बन डाई ऑक्साइड आदि गैसों से पर्यावरण दूषित एवं असन्तुलित हो रहा है। विश्व में कार्बन गैस की वार्षिक मात्रा पांच सौ करोड़ टन ऑक्सीजन रही है। ग्रीन हाउस के प्रभाव से पृथ्वी का औसत ताप 3 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ने की संभावना है, जिससे ध्रुवों के हिम के द्रवित होने से समुद्र तल में दो मीटर तक वृद्धि हो सकती है। अतः समुद्रतल पर स्थित विश्व के अनेक नगरों के अस्तित्व के लिए भयंकर संकट गहरा रहा है। कैरियन सागर में जल स्तर में एक मीटर की वृद्धि प्रत्यक्ष संकट का द्योतक है। वैज्ञानिक प्रगति ने पर्यावरण में हमारे सुरक्षा कवच ओजोन आवरण के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया है। इससे सूर्य की पैराबैगनी किरणों के विकिरण से हमारा अस्तित्व खतरे में है। यह सृष्टि के विनाश की पूर्व चेतावनी है। इसी प्रकार बढ़ते हुए सल्फर डाई ऑक्साइड एवं नाइट्रोजन गैस के ऑक्सीकरण से कभी भी अम्लीय वर्षा हो सकती है जो हमारे लिए विनाशकारी विभीषिका है। वर्तमान में खाड़ी युद्ध के कारण तेल के कुओं की अनेक वर्षों तक न बुझने वाली अग्नि से उत्पन्न ऊष्मा एवं प्रदूषण ने संसार को विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया है। वैज्ञानिक प्रगति ने ध्वनि प्रदूषण का विषैला रसायन भी हमें उपहार में दिया है। कारखानों से ध्वनित असंख्य कोलाहल, वाहनों की तीव्र, ध्वनियां, अशान्ति एवं रक्तचाप को निरन्तर बढ़ा रहे हैं। ध्वनि प्रदूषण हृदय एवं पाचनतन्त्र को भी दुष्प्रभावित कर रहे हैं। वृक्ष ध्वनि के

अवशोषक हैं, एवं वायु प्रदूषण के निवारक अतः ध्वनि प्रदूषण, ऊष्मा एवं गैसीय प्रदूषण के निर्वारण के लिए वृक्षों के आरोपण एवं संरक्षण की ओर युद्ध स्तर पर ध्यान देना चाहिए ।

वनों की वर्तमान स्थिति

भूवैज्ञानिकों का कथन है कि पृथ्वी में वनों का भू-भाग न्यूनतम 33 प्रतिशत होना चाहिए । एक सर्वेक्षण के अनुसार वर्तमान में हमारे देश में वन क्षेत्र संकुचित होकर 22 प्रतिशत रह गया है । वनों के तीव्र विनाश के कारण सघन वन केवल 11 प्रतिशत रह गए हैं । सर्वाधिक वन मध्य प्रदेश में हैं जहां सर्वाधिक वनों का विनाश हुआ है । क्षेत्रफल की दृष्टि से देश में सबसे अधिक वन अरुणाचल में एवं सबसे कम पंजाब-हरियाणा एवं राजस्थान में हैं । वनों का अनवरत विनाश हमारे पर्यावरण के लिए गम्भीर चुनौती है । सन् 1950 से 1990 तक चार दशकों में देश में सघन वृक्षारोपण कार्यक्रम के अन्तर्गत नौ सौ बीस लाख हैक्टेयर भूमि में वृक्षारोपण हुआ था जो वर्तमान में 50 लाख हैक्टेयर तक सीमित हो गया है । राजस्थान में एक लाख हैक्टेयर भूमि में सघन वृक्षारोपण का कार्यक्रम है । वृक्षारोपण की अपेक्षा वृक्ष संरक्षण कार्यक्रम की आज विशेष आवश्यकता है ।

वन सम्पदा संरक्षण के उपाय

संकुचित वनों के पुनर्जीवन की आज प्रमुख आवश्यकता है । वन सम्पदा विकास की दिशा में पौध शालाएं सघन वानिकी, वानिकी संकल्प, व्यापक वनारोपण जैसे बहुआयामी कार्यक्रमों के होते हुए भी वन रहित नंगी भूमि व्यापक रूप से दृष्टिगोचर होती है । वनीकरण के सरकारी आंकड़ों में एवं वास्तविक वन विकास की स्थिति में जो विरोधाभास है, उसकी यथार्थता को समझना होगा । हमारा तीन चौथाई देश गांव में रहता है । अतः वनों की वृद्धि के लिए ग्राम केन्द्रीय समन्वित वन योजनाएं इस दिशा में आशा की केन्द्र हैं । भौगोलिक स्थिति एवं मौसम को ध्यान में रखकर वन विकास के लिए भिन्न-भिन्न विधियों का उपयोग आवश्यक है ।

इसके साथ कुछ अन्य उपाय भी विचारणीय हैं ।

- वृक्षों एवं वन्य प्राणियों के प्रति ग्रामीणों में उदार एवं संवेदनापूर्ण सोच उत्पन्न करना चाहिए । जिससे सम्बन्धित कार्यक्रमों में उनकी रुचि व अभिवृत्ति उत्पन्न हो सके ।
- वृक्षारोपण में लघु वन उपज भी प्राप्त होती है । अतः प्रोत्साहन देकर ग्रामवासी इस लाभ के भागी बनें । वृक्षों के साथ घास, मूंज घास, बांस, रतनजोत आरोपण को भी प्रोत्साहन प्राप्त होना चाहिए जिससे ग्रामीणों को अतिरिक्त आय मिलने से वृक्षारोपण में विशेष रुचि उत्पन्न हो सकती है ।
- वानिकी कार्यक्रमों में स्वैच्छिक संस्थाओं, समितियों को भी भूमि आवंटित कर निर्धारित समय में वृक्षारोपण संवर्द्धन के लिए उनको वन उपज के उपयोग की पूरी स्वतंत्रता प्राप्त हो । निजी भूमि में वृक्षों के "जीवन" (संरक्षण) के आधार पर ही अनुदान दिया जाना चाहिए । उदार-अनुदान के साथ वन उपज का लाभ ग्रामवासियों के लिए विशेष उत्प्रेरक होगा ।
- विद्यालय में वानिकी को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाना चाहिए । विद्यालय, चिकित्सालय, कार्यालय, एवं कारखानों के परिसर में वन, उपवन, उद्यान अनिवार्य रूप से विकसित हों ।
- वृक्षारोपण के साथ वृक्ष संरक्षण कार्यक्रम एक अभियान के रूप में प्रारम्भ किया जाना चाहिए । रक्षित एवं सुरक्षित वन सम्पदा की विशेष देखभाल आवश्यक है । समस्त कार्यक्रमों में ग्रामीणों की सक्रिय भागीदारी होनी चाहिए ।
- वन सम्पदा की रक्षा के लिए समाज में दृढ़ इच्छा शक्ति उत्पन्न की जाए । वृक्षों के प्रति आत्मिक लगाव एवं जागरूकता के लिए वृक्षों के संरक्षण में जो ऐतिहासिक बलिदान हुए हैं, उनकी यशोगाथा से तथा वृक्षों के प्रति समर्पित प्रेरक व्यक्तित्व जैसे बाबा आमटे, सुंदरलाल बहुगुणा, चंडीप्रसाद भट्ट हैं, उनके कृतित्व से जनसाधारण को परिचित कराना चाहिए ।
- जनसंख्या वृद्धि पर कठोर अनुशासन रखते हुए वन संपदा के दोहन की सीमा निर्धारित करनी चाहिए । देश में पारिस्थितिकी विज्ञान (इकोलोजी) एवं अर्थनीति (इकोनोमी) में संतुलन स्थापित कर वन संपदा की रक्षा की जा सकती है ।
- बंजर भूमि में वानिकी कार्यक्रम को प्रोत्साहित करना चाहिए एवं कृषि वानिकी द्वारा भूमि की उत्पादकता में वृद्धि की

वन संपदा एवं पर्यावरण का सह-अस्तित्व है । अतः पर्यावरण एवं वन संपदा के संरक्षण के लिए हमको गांव-गांव में अलख जगाना चाहिए अन्यथा हमारी वर्तमान एवं अजन्मी पीढ़ियां गंभीर संकट में हैं ।

भट्ट सदन, मंगलपुरा
झालावाड़ (राज.)-326001

पर्यावरणीय प्रदूषण और पारिस्थितिकी असंतुलन

□ सत्यभान यादव □

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी असंतुलन की बढ़ती भयावहता ने आज सारे संसार को विनाश के कगार पर ला खड़ा कर दिया है। प्रदूषण चाहे जिस प्रकार का हो, उसका असर हमारे पर्यावरण पर गुंफित रूप से पड़ता है। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या से विश्व के सभी विकसित एवं विकासशील देश पीड़ित हैं लेकिन औद्योगिक रूप से विकसित राष्ट्रों में यह समस्या कहीं अधिक गंभीर है। औद्योगीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति, वनों की अंधाधुंध कटाई, जनसंख्या के बढ़ते दबाव, कृषि क्षेत्र पर बढ़ती जनसंख्या निर्भरता, औद्योगिक कचरे का नदियों एवं झीलों में बहा देना एवं उनसे निकलने वाले धुंएं के गुब्बारों जैसे अनेक कारण हैं जिनसे पर्यावरण असंतुलन तथा पारिस्थितिकी असंतुलन को अप्रत्याशित रूप से बढ़ावा मिला है।

परि+आवरण से मिलकर पर्यावरण शब्द बना है, इसके मायने हमारे चारों ओर के वातावरण से लगाया जाता है। प्रकृति ने अपने सभी अवयवों में संतुलन के आधार पर पर्यावरण का निर्माण किया था लेकिन मानव ने अपने स्वार्थों के वशीभूत होकर इस संतुलन को असंतुलन में बदल दिया। मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि "व्यक्ति अनुवांशिकता एवं वातावरण का गुणनफलन है।" महान् दार्शनिक अरस्तू का कथन है कि "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है।" अतः पर्यावरण हमारे जीवन के लिये अनिवार्य ही नहीं अपितु अभिन्न अंग भी है। पर्यावरण की शुद्धता एवं स्वच्छता पर ही मनुष्य का स्वास्थ्य एवं जीवन निर्भर है। मनुष्य के अपने तथा अपनी आने वाली संतति के कल्याण के लिये पर्यावरण की सुरक्षा पर अधिक से अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

प्रदूषण से तात्पर्य दूषित करने से है अर्थात् भौतिक, रासायनिक एवं जैविक रूप से कोई भी ऐसा परिवर्तन हो जो पर्यावरण के किसी भी अवयव के लिये हानिकारक हो प्रदूषण कहलाता है। मनुष्य ने अपनी विकासोन्मुख आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्राकृतिक संतुलन को तिलांजलि देकर उसका अंधाधुंध शोषण तो किया ही साथ ही ऐसा कोई प्रयास भी नहीं किया जिससे पर्यावरण की बढ़ती भयावहता को कम किया जा सके। पर्यावरण प्रदूषण में अनेक कारण उत्तरदायी हैं जिनका उल्लेख करना अपेक्षित होगा।

प्रदूषण के उत्तरदायी प्रमुख कारक

पर्यावरण प्रदूषण के अन्तर्गत कई प्रकार के प्रदूषण सम्मिलित किये जाते हैं जिनमें वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण आदि मुख्य हैं। प्रदूषण के कारकों में उद्योगों का नाम सर्वप्रथम उभर कर सामने आता है। वायु प्रदूषण के अन्तर्गत वायु में ऐसे तत्वों का पहुंचना है जो जीवन के लिये किसी भी रूप में हानिकारक हों, को लिया जा सकता है। धुंआ-धूल, कार्बन, सीसा, कैडमियम, कार्बनडाईऑक्साइड, कार्ब मोनोऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड, नाइट्रिक ऑक्साइड इत्यादि मुख्य प्रदूषित करने वाले कारण हैं। एक स्वस्थ व्यक्ति प्रतिदिन लगभग 22 हजार बार सांस लेता है अर्थात वह लगभग 35 पौण्ड हवा प्रतिदिन लेता है। इस प्रकार वह लगभग 12 हजार पौण्ड हवा प्रतिवर्ष अपने फेफड़ों से बाहर निकालता है, फलस्वरूप वह 60 वर्ष तक की औसत आयु में लगभग 70 हजार पौण्ड शुद्ध वायु को अशुद्ध कर देता है। इसी तरह भोजन पकाने के रूप में उपलों, लकड़ियों, कोयले, मिट्टी-तेल तथा खाना पकाने की गैस आदि से होने वाले वायु-प्रदूषण का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। उद्योगों से निकलने वाले भयानक धुंएं को मनुष्य तो क्या पहाड़-पत्थर भी सहन करने में अक्षम हैं। उदाहणार्थ मथुरा तेल रिफ़ाइनरी से निकलने वाली गैस से 60 किमी. दूर स्थित ताजमहल पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के संकेत मिल रहे हैं। साथ ही अन्य प्रदूषित कारकों में परिवहन के स्वचालित साधनों से निकलने वाली गैसों से पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। वाहनों के धुंएं के ये कण श्वास नली से होते हुये हमारे फेफड़े में गहरे चुभ जाते हैं, जिससे ये हमारी सुविधा के साथ-साथ हमारी उम्र घटाव एवं रोगों की जड़ साबित हो रहे हैं।

जल प्रदूषण के अन्तर्गत दैनिक क्रियाकलापों से निकले व्यर्थ के अपशिष्ट पदार्थों को पानी में बहा देना शामिल है। बड़े-बड़े शहरों में विभिन्न औद्योगिक इकाइयां अपने अपशिष्ट कूड़े कचरे को नदियों, तालाबों एवं झीलों में बहा देती हैं जिससे

क्षेत्र के समीप नदियों के पानी का रंग तक बदल जाता है। ऐसी स्थिति में यह दूषित पानी किसी भी जीवधारी के पीने योग्य नहीं रह जाता है, तथा जलीय जीव-जन्तुओं के शरीर में इनकी मात्रा एकत्रित होने लगती है जिसका प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर पड़ता है, लेकिन हमारी राष्ट्रीय जलीय धरोहर इन जीव-जन्तुओं की संख्या में प्रतिदिन कमी होती जा रही है। चूंकि ये जलीय जीव हमारे पारिस्थितिकी संतुलन बनाने में बहुत बड़ा योगदान देते हैं, अतः पर्यावरण शास्त्रियों के लिये यह एक बहुत बड़ी चिंता का विषय है। ताप विद्युत संयंत्रों को ठंडा करने के लिये जिस पानी का उपयोग किया जाता है उसे गर्म अवस्था में ही बहा दिया जाता है। यही नहीं बहाये गये जल के साथ ही इन संयंत्रों से निकलने वाली राख भी कुछ मात्रा में बहकर चली जाती है। परिणामतः जलस्रोत का पानी पीने, स्नान करने, जलीय वातावरण को संतुलित रखने, जलीय जन्तुओं के रहने तथा पेड़-पौधों के योग्य नहीं रह जाता, जिससे पारिस्थितिकी संतुलन पर सीधा घातक प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा कपड़ों एवं शरीर की सफाई में अपमार्जक (धुलाई के पाउडर एवं साबुन) पदार्थों को प्रयोग में लाने, सामरिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये खनिज पदार्थों का दुरुपयोग करने (जैसे खाड़ी युद्ध के दौरान किया गया) एवं जलीय परिवहन द्वारा खनिज तेलों की ढुलाई में जलयान के दुर्घटनाग्रस्त होने की अवस्था जैसी स्थितियों में भी जल-प्रदूषण होता है।

तीसरे प्रकार के प्रदूषण ध्वनि प्रदूषण का जिस व्यापकता के साथ विस्तार हुआ है, उसका तो सहज अनुमान लगाना भी असंभव है। सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि भारत के महानगरों का शोर गत 20 वर्षों में लगभग आठ गुना बढ़ गया है। कल-कारखानों के चलने से उत्पन्न घर-घराहट की आवाज मीलों तक आसानी से सुनी जा सकती है। कोयले से चलने वाले रेल इंजन ध्वनि प्रदूषित करने का कार्य रात-दिन करते हैं। इसी तरह विभिन्न प्रकार के यातायात के साधनों के ध्वनि-निस्सारक यंत्रों की खराबी से, हॉर्न के बजाने तथा एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ में ध्वनि प्रदूषण तेजी से हो रहा है। साथ ही वाहनों की बढ़ती संख्या एवं उनके रख-रखाव की कमी भावी भयावह भविष्य के संकेत दे रही है। अन्य ध्वनि प्रदूषक कारकों में रेडियो, टी.वी., लाउडस्पीकर, बैंडबाजे, पटाखे, फुलझड़ियां, स्टीरियो जैसे ध्वनि प्रसारक यंत्रों की अपरिमित संख्या और अनियंत्रित ध्वनि ने ध्वनि प्रदूषण को सैद्धांतिक बना दिया है। विभिन्न त्योहारों, विवाह एवं खुशियों के मौकों पर लोग विभिन्न प्रकार के पटाखों का इस्तेमाल करते हैं इससे ध्वनि प्रदूषण का कुप्रभाव पूरे समाज को भोगना पड़ता है। यही कारण है कि समाज में आज बहरों, गूंगों, चिड़चिड़े एवं पागलों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इन सभी साधनों का प्रयोग होते हम अपने चारों ओर देखते हैं जिससे सम्पूर्ण विश्व में इसकी व्यापकता एवं भयावहता का अनुमान लगाना भी असंभव-सा लगता है। चूंकि ध्वनिप्रदूषण हमारे पारिस्थितिकी संतुलन का महत्वपूर्ण घटक है, अतः ध्वनि-प्रदूषण का कोई भी कारण अथवा प्रयास सीधे हमारे वातावरण, हमारे मन मस्तिष्क की शांति पर सीधा प्रभाव डालता है।

पर्यावरण के बढ़ते दुष्परिणामों के अन्तर्गत विश्व पर्यावरणविदों के लिये एक नई चिंता उठ खड़ी हुई है, वह है ओजोन परत का क्षय। पृथ्वी के पर्यावरण में पहले वायुमंडल में पृथ्वी के प्राणियों को बचाने वाली जो "ओजोन परत" थी, उसमें जगह-जगह छेद हो गये हैं। वह जगह पतली हो गई है। पिछले 20 वर्षों में पृथ्वी की ओजोन परत 2.3 प्रतिशत सिकुड़ी है और इस कारण सूर्य के परा बैंगनी विकिरणों का पृथ्वी पर बढ़ा है। इससे त्वचा के कैंसर को बढ़ावा मिला है। वैज्ञानिकों के अनुसार ओजोन परत में 1 प्रतिशत की कमी त्वचा कैंसर के मामलों में 6 प्रतिशत तक की वृद्धि कर सकती है। बढ़ते हुये पराविकिरणों से पृथ्वी के पेड़-पौधों व समुद्री जीव-जंतुओं को भी खतरा है।

पृथ्वी के पर्यावरण में हमने "कार्बन-डाई-ऑक्साइड" जैसी पौध घर प्रभाव (ग्रीन हाउस इफेक्ट) वाली गैसें इकट्ठी कर दी हैं, जिससे पृथ्वी का तापक्रम बढ़ा है। एक अन्य वैज्ञानिक अध्ययन के अनुसार अनुमान है कि इस गैस की मात्रा लगभग 0.03 प्रतिशत है। लेकिन प्रदूषण के कारण अगली शताब्दी के अंत तक इसकी मात्रा बढ़कर 0.07 प्रतिशत हो जायेगी। जिससे विषुवत रेखीय क्षेत्र का तापक्रम 10 से. तथा ध्रुवी क्षेत्र का तापक्रम 4.5 से 7 से। तक बढ़ जाने की संभावना है। अतः पृथ्वी का औसतन 3 से. तापक्रम बढ़ जायेगा। उक्त तापक्रम बढ़ने से आर्कटिक महासागर की सम्पूर्ण बर्फ पिघल जायेगी जिससे 21वीं शताब्दी के अन्त तक समुद्र का जलस्तर 5 से 7 मीटर बढ़ जायेगी। परिणामस्वरूप पृथ्वी के अनेक निचले हिस्से डूब जायेंगे। इस क्षेत्र में विश्व की लगभग 30 प्रतिशत जनसंख्या आबाद है। प्रदूषण के संभावित परिणामों में प्रदूषण का प्रभाव स्थल या वायुमंडल तक ही सीमित नहीं रहता, वर्तमान में इसके अनेक रूप देखे जा सकते

हैं । ध्वनि प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु-प्रदूषण एवं सामाजिक प्रदूषण उग्र से उग्रतर होते जा रहे हैं । जनसंख्या के बढ़ने से अधिक आवास, भोजन, उद्योग, परिवहन आदि की आवश्यकताओं अनेक भयंकर रोग जैसे अंधापन, हृदय रोग, श्वास रोग, नेत्र रोग व कान रोगों में अनवरत वृद्धि हो रही है । ऐसा अनुमान है कि अपशिष्ट पदार्थों के महासागरों में पहुंचने से उनके जलीय-जीवों की संख्या में लगभग 30-35 प्रतिशत की कमी आई है । वनों की बेतहाशा कटाई से पृथ्वी के ताप में वृद्धि हो रही है । जहरीली गैसों की मात्रा बढ़ी है जिससे वायुमंडल के सभी तत्व अप्रभावित हुये बिना नहीं रह सके । संसाधनों के अविवेकी प्रयोग एवं दुरुपयोग ने मानव जीवन के अस्तित्व पर एक प्रश्नचिन्ह लगा दिया है ।

वायुमंडल में उपस्थित सल्फर डाई ऑक्साइड पानी के साथ संयोग करके सलफ्यूरिक अम्ल (तेजाब) बनाती है जिससे तेजाबी वर्षा होती है । बम्बई तथा ट्राम्बे में वर्षा जल का पी.एच. 4.85 पाया गया है । राजस्थान के औद्योगिक नगर कोटा में वैज्ञानिकों ने तेजाबी वर्षा होने की संभावना व्यक्त की है । औद्योगिक रूप से विकसित देशों में तेजाबी वर्षा हो रही है । जिसके विनाशकारी परिणाम सामने आने लगे हैं । जलीय-स्त्रोत में अम्ल की अधिकता के कारण पेयजल की समस्या और मत्स्य पालन को खतरा उत्पन्न हो गया है । यह नहीं, इससे प्रभावित क्षेत्रों की भूमि भी धीरे-धीरे अम्लीय हो रही है जिससे पौधे असमय ही नष्ट हो जाते हैं । विश्व प्रसिद्ध "स्टेच्यू ऑफ लिबर्टी" तेजाबी वर्षा के कारण ही टूट गयी थी । इस प्रकार विश्व के अन्य ऐतिहासिक स्थल प्रदूषण के शिकार होकर अपनी आभा दिन-प्रतिदिन खोते जा रहे हैं ।

विश्व प्रसिद्ध नोबल पुरस्कार विजेता डॉ० मेलविन काल्विन ने चेतावनी दी है, यदि मानव ने शीघ्र ही अपने अविवेकी कार्यों पर रोक नहीं लगाई तो बर्फ के पिघलने से समुद्र जल नीची तटीय भूमि जैसे फ्लोरिडा, जापान, अमेरिका के बहुत से भागों को डुबो देगा । सागरीय प्रदूषण से अनेक देशों में खाद्यान्न की समस्या उत्पन्न हो जायेगी । प्रदूषण न केवल मानव के शरीर एवं मानसिक विकास को अवरुद्ध करता है बल्कि गर्भ में पल रहे शिशुओं में भी विकृतियों को जन्म देता है । लगभग सभी संक्रामक रोगों का प्रसार प्रदूषित जल से होता है । वायु प्रदूषण से आंखों, त्वचा, कानों, फेफड़ों आदि सभी बाह्य एवं आंतरिक अंगों में विसंगतियों से नकारा नहीं जा सकता है । विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विकासशील देशों में 75 प्रतिशत बच्चों की मृत्यु अशुद्ध जल के पीने से होती है । पेट के 80 प्रतिशत रोग दूषित जल के कारण होते हैं । प्रदूषण का कुप्रभाव सभी देशों में स्पष्टतः देखा जा सकता है । लाखों व्यक्ति अपाहिज हो चुके हैं, इससे भी अधिक व्यक्ति अस्पतालों में दिन-रात मौत और जिंदगी के आत्मघाती संघर्ष में जी रहे और और इन सबसे अधिक नवजात शिशु प्रदुषण के भयावह ताण्डव से चीत्कार कर अपनी जीवन लीला समाप्त कर रहे हैं । अतः समय रहते सभी का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह प्रदूषण प्रकारकों से विवेक बुद्धि की लड़ाई लड़ें अन्यथा डायनासौर की तरह हम भी पृथ्वी से विलुप्त हो जायेंगे ।

कुछ मौलिक उपाय

औद्योगीकरण की वर्तमान अंधाधुंध दौड़ में पर्यावरण सुधार की आवश्यकता बढ़ती जा रही है । जहां एक ओर विकास प्रक्रिया को अनवरत बनाये रखना जरूरी है, उससे भी कहीं अधिक मानव जीवन के कल्याण पक्ष पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है । चूंकि प्रदूषण की समस्या मानवीय कल्याण से जुड़ी हुई है, अतः प्रदूषण से बचने के लिये प्राकृतिक साधनों के विवेकपूर्ण दोहन की प्रवृत्ति और प्रदूषण मुक्त प्रौद्योगिकी को अपनाना होगा जिससे न केवल पर्यावरण प्रदूषण की समस्या से बचा जा सकेगा बल्कि अपशिष्ट पदार्थों को पुनः उपयोगी बनाया जाएगा । वैज्ञानिक प्रगति को समाज की उन्नति के लिये प्रयोग में लाने से पहले उसके विवेकपूर्ण उपयोग पर बल देना होगा ।

बड़े-बड़े औद्योगिक कल-कारखानों एवं स्वचालित वाहनों के प्रयोग में आने वाले ईंधन में ऐसे परिवर्तन करने होंगे कि इनसे निकलने वाली गैसें आपस में क्रिया करके इस प्रकार के यौगिकों में परिवर्तित हो जायें जो किसी भी क्षेत्र में पुनः उपयोग में ली जा सकें ।

इस दिशा में सभी उपायों को अपनाते हुये औद्योगिक विकास की नई प्रौद्योगिकी प्राकृतिक नियमों के अनुकूल विकसित करनी होगी । सरकार व जनांदोलन द्वारा वनक्षेत्र में विस्तार कर हम न केवल रेगिस्तान की कायापलट कर सकते हैं बल्कि प्रकृति-प्रदत्त परिस्थितियों अनुकूलन आदि रूप को पुनः लौटा सकते हैं ।

शोधार्थी
दक्षिण एशिया अध्ययन केन्द्र
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

पर्यावरण और बच्चे

□ सत्यव्रत आर्य □

जिस प्रकार से मानव शरीर में प्रत्येक अंग एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं, ठीक उसी प्रकार से प्रकृति के प्रत्येक जीव-जन्तु, पशु-पक्षी और पेड़-पौधे एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। इस प्रकार एक-एक कड़ी के सन्तुलित गुंथन से यह बहुरंगी प्रकृति बनी है।

पर्यावरण के जल, वायु, ध्वनि तथा भूमि प्रदूषण को देखते हुए वैज्ञानिकों ने 1983 में "विश्व 2000" नामक एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था, जिसमें यह कहा गया था कि यदि पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित न किया गया तो सन् 2035 तक तेजाबी वर्षा, भुखमरी और महामारी का ताण्डव नृत्य होगा और बच्चों का भविष्य खतरे में पड़ जायेगा।"

पर्यावरण में कार्बन-मोनोऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रसऑक्साइड आदि की अत्यधिक उपस्थिति से गर्मी बढ़ रही है। इस गर्मी की वृद्धि से पर्वतों, तथा दोनों ध्रुवों की बर्फ पिघल कर समुद्र से मिल रही है, जिसके कारण समुद्र का जल-स्तर दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। इस बढ़ते जल-स्तर से निकट भविष्य में पृथ्वी का काफ़ी बड़ा भू-भाग जलमग्न हो सकता है। एक लाख बीस हजार वर्ष पूर्व ऐसा हो चुका है।

विकास के नाम पर विनाश बढ़ रहा है। निरन्तर बढ़ते हुए करकट से नदियों का जल प्रदूषित हो रहा है, जिससे जलीय जीव-जन्तुओं के साथ-साथ बच्चों का जीवन भी खतरे में है। ये अनेक व्याधियों के शिकार हो रहे हैं।

इसी प्रकार उर्वरकों तथा कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से जल तथा भूमि प्रदूषण भी बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। भूमि की उर्वरा शक्ति निरन्तर कम होती जा रही है। पौधों तथा बच्चों को नित-नयी बीमारियां पैदा होती जा रही हैं।

पर्यावरण में असंतुलन उत्पन्न करने की दिशा में मनुष्य की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण है। आज का मनुष्य प्रकृति की गोद में पलकर अज्ञानतावश प्राकृतिक संसाधनों के अतिशय दोहन में लगा है। पिछले 30 वर्षों से पारिस्थितिकीविदों ने समझने और समझाने का अथक प्रयास किया है कि समय और स्थान की सीमाओं में हमारे संसाधन असीमित नहीं हैं। अति उपभोगी सभ्यता में औद्योगिक उत्पादन प्राकृतिक संसाधनों और ऊर्जा स्रोत भण्डारों पर आधारित है जो दोनों निश्चय ही तेजी से कम हो रहे हैं। इस प्रक्रिया में संसाधनों द्वारा ही निर्मित जीवपोशी तन्त्र संकीर्ण, दूषित तथा विषाक्त होता जा रहा है। आज का स्वार्थी मानव जल्दी से मुनाफ़े की खोज में प्राकृतिक तन्तुओं को तोड़कर फिर से जोड़ने की बात नहीं सोचता।

प्रकृति को वश में करने की प्रवृत्ति और उसे लूटने-खसोटने का दुष्प्रभाव यह पड़ा है कि आज ऊर्जा के प्राकृतिक भण्डार समाप्त हो रहे हैं। वे हमारे औद्योगिक युग की बढ़ती मांगों को पूरा करने में असमर्थ हो चुके हैं। औद्योगिक मानव प्रकृति की सौम्यता, सदाशयता और सुन्दरता के साथ खिलवाड़ कर रहा है। उसे इस बात की तनिक भी परवाह नहीं कि प्रकृति से निश्चय ही उसकी सारी बुनियादी जरूरतों की पूर्ति संभव है, किन्तु उसकी भोग्यत्व-भावना, चौर्यवृत्ति और तृष्णा की तुष्टि कदापि नहीं।

उत्तराखण्ड में जन्मा और चल रहा "चिपको आन्दोलन" के हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र में पेड़ों की कटाई रोकने का प्रतीकात्मक आन्दोलन मात्र नहीं है, बल्कि प्रख्यात कृषि वैज्ञानिक डॉ० एम.एस. स्वामीनाथन के शब्दों में 'एक प्रत्यक्ष दर्शन है, एक जीवन्त विचार है, यह मौजूदा भोगवादी सभ्यता के खिलाफ एक विद्रोह है।' इस सभ्यता ने अपनी निरन्तर बढ़ती हुई भोगलिप्सा की तृप्ति के लिए मानव को प्रकृति का विजेता बनाकर धरती के साथ अत्याचार किया है।

पर्यावरण को सुधारने के लिए समग्र दर्शन की आवश्यकता है। औद्योगिक विकास रोकने की नहीं, बल्कि उसके पीछे काम करने वाली दूषित विचारधारा ही बदलने की आवश्यकता है। मानव प्रयासों को उपयुक्त दिशा देनी चाहिए, संस्कृति को विकृत होने से बचाना चाहिए। इसके लिए एकमात्र इलाज है–भारतीय शिक्षा, जिसमें मानवता के तत्व कूट-कूटकर भरे हैं। लोग अपने भावी जीवन को ठीक तरीके से बिता सकें, यही उसका उद्देश्य है। तेजी से उभरने वाली सभी संस्कृतियों का पतन अवश्यम्भावी है, किन्तु भारतीय संस्कृति-आश्रम संस्कृति जिसे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने "अरण्य संस्कृति" कहा है–सभी विरोधों से सामना करके भी बनी रहने वाली शाश्वत संस्कृति है, समग्र चिन्तन

की संस्कृति है, सच्चे अर्थों में मानव संस्कृति है जिसकी शिक्षा बच्चों को भारतीय परिवेश में ही मिल सकती है, क्योंकि "सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्" भारतीय स्कूल ही का आदर्श हैं।

विश्व पर्यावरण दिवस का शुभारम्भ संयुक्त राज्य अमरीका में लगभग 20-22 वर्ष पूर्व युवकों में जाग्रत व्यापक आक्रोश को देखकर किया गया, किन्तु हाल ही में पर्यावरण संरक्षण में बच्चों की भूमिका भी उजागर हुई है। वृक्षारोपण कार्यक्रमों में स्कूली बच्चे प्रायः बड़े उत्साह व लगन से भाग लेते हैं। कहीं-कहीं ये बच्चे अपने हाथों से रोपित पौधों की देखभाल पूरे वर्ष करते रहते हैं। बच्चों का पेड़-पौधों के प्रति एक स्वाभाविक और अटूट प्रेम होता है।

श्री सुन्दर लाल बहुगुणा बच्चों की भूमिका के बारे में अपने अनुभव बताते हैं, 'छोटे-छोटे बच्चों में जो "चिपको आन्दोलन" में महिलाओं के साथी रहे हैं, धरती माता की रक्षा के लिए अभूतपूर्व त्याग की भावनाओं का विकास हो रहा है। सिल्यारा गांव के एक दस वर्षीय बालक धर्मेन्द्र से जब यह पूछा गया कि वह पांच किलोमीटर दूर अमरसर के जंगलों में पेड़ पर चिपकने के लिए क्यों गया ? तो उसका उत्तर था, "पिछली बरसात में भूस्खलन के कारण हमारे खेत नष्ट हो गए थे। मेरी विधवा मां फूट-फूटकर रोई क्योंकि उसके पास हम तीन भाइयों का पालन-पोषण करने के लिए दूसरा साधन नहीं था, मुझे लगा कि दूसरे गांव में पेड़ कटेंगे तो वहां भूस्खलन होगा और खेत दबेंगे। मेरी मां की तरह दूसरी मां भी रोएगीं। माताओं के आंसू पोंछने के लिए इस आन्दोलन में शामिल हुआ।'

बच्चे राष्ट्र की धरोहर होते हैं अतः उनके भविष्य के लिए हमें पर्यावरण एवं वन सम्पदा की रक्षा करनी होगी। बच्चों में अपने आसपास के वातावरण के लिए अटूट लगाव व भारी जिज्ञासा होती है। बच्चे जब नई-नई परिस्थितियों से गुजरते हैं तो नए-नए अनुभव प्राप्त करते हैं। प्रत्येक नया अनुभव किसी न किसी रूप में उनमें विकास तथा परिपक्वता लाता है और अपना अलग प्रभाव डालता है। बच्चा, माता-पिता, सम्बन्धियों, पड़ोसियों और मित्रों के संरक्षण और साहचर्य में छोटी-छोटी बातें सीखता है। जो उसके भावी जीवन के लिए बेहद जरूरी होती हैं। ऐसे में समझदार माता-पिता बालक को सही प्रेरणा देकर उसे प्रशिक्षित करते हैं। पर्यावरण के प्रति बच्चों के मन में गहरी जिज्ञासा होती है और पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों के लिए उनके मन में प्रेम की भावना होती है, किन्तु इसको और अधिक गहरा व व्यापक बनाना बच्चे के माता-पिता, अभिभावक व स्कूल शिक्षक का दायित्व है।

पर्यावरण संरक्षण का आन्दोलन समाज के सभी वर्गों को एक साथ लेकर ही सफल हो सकता है। इसके प्रौढ़ व परिपक्व सदस्यों का उत्तरदायित्व सही मार्गदर्शन का होगा जबकि युवकों व बच्चों की भूमिका उन दिशा निर्देशों को समुचित रूप में कार्यान्वित करने की होगी। इस ओर बच्चे को सबसे पहले तो उसके माता-पिता ही शिक्षित कर सकते हैं। उसके पश्चात् स्कूलों में उसे समुचित जानकारी देनी होगी। विश्व के कई विकसित देशों, विशेषकर अमरीका, इंगलैंड, जर्मनी, जापान आदि में दूसरी व तीसरी कक्षा में ही पर्यावरण की प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है। पर्यावरण क्या है ? उसके विभिन्न घटक कौन-कौन से हैं ? और इसके साथ ही स्थानीय पेड़-पौधों व पशु-पक्षियों के बारे में उसे संक्षेप में ज्ञान कराया जाता है। दसवीं कक्षा तक आते-आते पर्यावरण के बारे में छात्रों का ज्ञान व्यापक और गहरा हो जाता है। भारत में नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत एन.सी.ई.आर.टी.के नवीनतम पाठ्यक्रम में पर्यावरण पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। जिन स्कूलों में यह पाठ्यक्रम स्वीकृत है वहां कक्षा 3 से ही पर्यावरण सम्बन्धी प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है। आगे की कक्षाओं में यह ज्ञान सर्वमान्य तथ्यों और सिद्धांतों के निरूपण में बदल जाता है जिसके आधार पर विद्यार्थी तर्कों व तथ्यों की भाषा समझने लगता है।

स्कूलों में बच्चों को पर्यावरण संबंधी ज्ञान किस प्रकार दिया जाए जिससे वह उसके संस्कारों में घुल-मिल जाए और उसके व्यक्तित्व से जुड़ जाए। इसके बारे में कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं –

बच्चों को कहानी से अटूट लगाव होता है। भारत में कहानी कह-कहकर बहुत कुछ सिखा देने की परम्परा बहुत पुरानी है, किन्तु ये कहानियां मनोरंजक और ज्ञानवर्धक होनी चाहिए। छोटे बच्चे प्रायः पशु-पक्षियों की कहानियां पसन्द करते हैं। जैसे-जैसे वे बड़े होते जाते हैं उनकी रुचि भी विकसित होती जाती है। घर, पड़ोस, आस-पास के वातावरण, पेड़-पौधे, पालतू जानवरों आदि से जुड़ी कहानियां, लोक-कथाएं तथा पौराणिक गाथाएं उन्हें आनन्द और सुख देती हैं और उनकी जिज्ञासा शान्त करती हैं।

बच्चों पर लययुक्त, सरस व प्रेरक गीतों का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है और यदि इन गीतों को संगीत के साथ तालबद्ध

करके सामूहिक रूप से बच्चों द्वारा गाया जाए तो इसका विशेष प्रभाव होता है । हिन्दी में पर्यावरण सम्बन्धी कुछ सरस गीत व मधुर कविताएं उपलब्ध हैं । श्री घनश्याम सैलानी द्वारा रचित "पेड़ की पुकार" एक सुन्दर कविता है जिसने 'चिपका आन्दोलन" में जन-चेतना जाग्रत करने में प्रभावी भूमिका निभायी है ।

अभिनय करने और छोटे-छोटे नाटकों के मंचन में बच्चे विशेष रुचि लेते हैं । श्री प्रेमानंद चंदोला ने बच्चों के लिए कुछ छोटे-छोटे नाटक लिखे हैं, जिनमें पशु-पक्षियों की भावनाओं को सजीव ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

प्रकृति दर्शन के लिए बच्चों की टोलियों को कहीं बाहर ले जाना । ये यात्राएं कम या अधिक दूरी की हो सकती हैं । वन और जंगलों, नदी के किनारे या समुद्र तट अथवा पहाड़ी यात्राओं पर बच्चों के साथ उनके शिक्षकों का जाना अनिवार्य है । इन रमणीक व प्राकृतिक सौन्दर्य के स्थानों पर पर्यावरण के बारे में बच्चों को सहज ही ज्ञान कराया जा सकता है । इन मनोरंजक यात्राओं के माध्यम से बच्चे प्रकृति के सीधे सम्पर्क में आते हैं जिससे न केवल उन्हें आनन्द प्राप्त होता है वरन् उनका ज्ञानवर्धन भी होता है ।

स्कूलों और विद्यालयों में वृक्षारोपण कार्यक्रमों का आयोजन करना । कुछ देशों में तो स्कूलों के प्रत्येक छात्र द्वारा एक वृक्ष लगाने की योजनाएं चल भी रही हैं । "वृक्षमित्र" नामक स्वयंसेवी संस्था की कई शाखाएं बम्बई और दिल्ली में सक्रिय हैं, जो कि महानगरों में वृक्षों की रक्षा और वृक्षारोपण के लिए बच्चों सहित समाज के सभी आयु वर्ग के लोगों का सहयोग लेती हैं ।

बच्चों को टेली-फिल्मों तथा पर्यावरण सम्बन्धी वृत्त चित्रों को दिखाकर फिल्म सोसाइटियों द्वारा प्रकृति चित्रण पर बनाई गई सफ़ारी फिल्मों, पक्षी अभयारण्यों या वन्य जीवन पर निर्मित फिल्में दिखाकर उनको पर्यावरण एवं वानिकी सम्बन्धी जानकारी उपलब्ध करवायी जा सकती है ।

अब दूरदर्शन द्वारा भी नियमित रूप से पशु-पक्षियों के बारे में बच्चों के सीरियल भी दिखाए जाते हैं । हाल ही में "अनोखा अस्पताल" सीरियल बच्चों ने बहुत पसन्द किया ।

बच्चों में ऊर्जा तो भरपूर होती है, उनमें कुछ करने की गहरी लालसा भी होती है। आवश्यकता है – इस शक्ति तथा लालसा को सही दिशा में उपयोग करने की । रचनात्मक कार्यों में बच्चों की बड़ी दिलचस्पी होती है । उनके अच्छे कार्यों के लिए यदि बच्चों को प्रोत्साहित किया जाए, जैसे–इसके लिए उनकी सराहना*की जाए या उन्हें कुछ पुरस्कार दिए जाएं तो ऐसे कार्यों में वे और भी अधिक उत्साह व लगन से जुट जाते हैं । अतः कोमल बालमन में जिन अच्छे संस्कारों का अंकुर होगा, वह आयु के साथ-साथ विचारों को उत्पन्न करेगा और बच्चे आगे चलकर पर्यावरण की समस्याओं को भली प्रकार समझेंगे । इस प्रकार वे एक जागरूक नागरिक तथा पर्यावरण के सजग प्रहरी बन जाएंगे ।

आर्य समाज मन्दिर,
अमेठी, सुल्तानपुर,
उत्तर प्रदेश

वानिकी में ग्राम पंचायतों की भूमिका

□ डॉ० बी.एम. चितलंगी □

पर्यावरण संरक्षण की समस्या पिछले कई वर्षों से गम्भीर विचार-विमर्श का केन्द्र रही है। 1972 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित मानव पर्यावरण पर सम्मेलन में कहा गया है कि पर्यावरण की अभिरक्षा एवं सुधार मानवता के लिए आवश्यक हो गया है और इसे शान्ति, आर्थिक तथा सामाजिक विकास के मौलिक उद्देश्यों के साथ जोड़ा जाना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति का उत्तरदायित्व हर स्तर पर नागरिकों, समुदायों, उद्योगों एवं संस्थाओं का है। इस घोषणा के बाद प्रत्येक राष्ट्र (विकसित या विकासशील) ने पर्यावरण अभिरक्षा की ओर ध्यान देना प्रारंभ किया है। भारत में न केवल नगरीय क्षेत्र अपितु, ग्रामीण क्षेत्र भी पर्यावरण असन्तुलन की समस्या से प्रभावित हो रहे हैं। इस अध्ययन में ग्राम पंचायत के सन्दर्भ में यह देखने का प्रयत्न किया गया है कि ग्राम पंचायत पर्यावरण प्रबन्धन में कहां तक सक्षम है तथा पंचायत प्रशासन को इस दिशा में और अधिक सक्रिय कैसे बनाया जा सकता है।

अध्ययन हेतु अवलोकन पद्धति के परम्परागत साधनों का उपयोग किया गया। सर्वेक्षणकर्त्ता द्वारा ग्राम श्रीबाला जी में दो बार जाकर सम्बन्धित पंचायत अधिकारियों, वन-विभाग अधिकारियों एवं जनता के प्रतिनिधियों तथा ग्राम के प्रबुद्ध नागरिकों से सम्पर्क किया गया तथा आवश्यक जानकारी एवं आंकड़े प्राप्त किये गये। अध्ययन के लिये पंचायत राज से सम्बन्धित साहित्य का भी अवलोकन किया गया।

गांवों में पर्यावरण संरक्षण की समस्या

गांवों से पर्यावरण का सम्बन्ध पानी एवं भूमि के स्रोतों से होता है। भूमि, पानी, पेड़-पौधे, पशुधन, जीव-जन्तु इत्यादि ग्रामीण पर्यावरण का निर्माण करते हैं। भोजन, ऊर्जा, पशुओं के लिये चारा, गृह-निर्माण में आने वाला सामान इत्यादि प्राकृतिक स्रोतों से ही प्राप्त होता है। ग्रामीण जनसंख्या में विस्तार के साथ-साथ ग्रामीणों की प्राकृतिक संसाधन पर निर्भरता भी बढ़ती जा रही है। यद्यपि शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याएं भिन्न प्रकार की हैं, परन्तु स्वच्छ जल का अभाव, रक्षित-वनों का कटाव, सफाई की समुचित व्यवस्था न होना, प्राकृतिक जन्तुओं का शिकार इत्यादि पर्यावरण को गम्भीर चुनौती दे रहे हैं। सन्तुलित पर्यावरण यह मांग करता है कि पीने का पानी स्वच्छ रहे, चरागाहों एवं जंगली जानवरों की रक्षा की जाए, पेड़ों की कटाई को रोका जाए एवं वनों की रक्षा की जाए।

राष्ट्रीय वन नीति में पर्यावरण स्थायित्व एवं सन्तुलन को मानव, जीव-जन्तुओं तथा पौधों के लिये आवश्यक माना गया है। इनसे प्राप्त होने वाले आर्थिक लाभों को गौण समझने की आवश्यकता बताई गई है।

ग्राम पंचायतों की शक्तियां एवं उत्तरदायित्व

राजस्थान में ग्राम पंचायत को प्रशासन की मूल इकाई माना गया है। ग्राम पंचायत न केवल ग्रामीण जीवन को नियमित ही बनाती या विकास कार्यों का संचालन करती है अपितु ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यावरण सन्तुलन बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका रखती है।

राजस्थान में पंचायत राज के प्रारंभ किये जाने से पूर्व ग्रामीण स्तर पर पर्यावरण संरक्षण की सुमचित व्यवस्था रही थी। ग्राम के बुजुर्ग एवं मुखिया इन लोगों को दण्ड देते थे जो सार्वजनिक स्थानों पर से पेड़ों की अवैध कटाई या ग्राम के पीने के पानी के स्रोत को गंदा करते थे। कुछ विशेष प्रकार के पेड़ों की कटाई को धार्मिक अपराध माना जाता था—जैसे पीपल का पेड़। देवस्थानों के लिए छोड़ी गई जमीन पर से कोई भी पेड़ों की अवैध कटाई नहीं कर सकता था। राजस्थान में विश्नोई सम्प्रदाय के लोग सभी प्रकार के हरे पेड़ों की कटाई को आज भी धार्मिक अपराध मानते हैं। जोधपुर जिले की लूणी पंचायत समिति का गांव खेजड़ी आज भी उन शहीदों की याद दिलाता है जिन्होंने खेजड़ी के पेड़ की कटाई रोकने के लिये अपने सिर कटवा लिये थे।

आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीणों का सामूहिक उत्तरदायित्व माना जाता है कि वे गांव के पीने के स्रोत के आवक क्षेत्र की साफ-सफाई करें। ग्रामीण स्रोत इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण के प्रति प्रारंभ से ही जागरूक रहे हैं। इसी परम्परागत मान्यताओं के आधार पर राजस्थान पंचायत राज अधिनियम

1935 में धारा 26 में पर्यावरण से सम्बन्धित निम्नलिखित व्यवस्थाएं रखी गई हैं –

1. खुले गटरों एवं नालियों पर ढक्कन की व्यवस्था करें ।.
2. ग्रामीण कुंओं एवं तालाबों पर पशुओं के पानी पिलाने एवं कपड़े धोने को रोकें ।
3. गांव से दूर मृतक पशुओं को डलवाने की व्यवस्था करें ।
4. ग्रामीण सड़कों, नालियों एवं तालाबों एवं कुंओं की सफाई की व्यवस्था करें ।
5. गंदगी को हटाने एवं सही स्थान पर रखने की व्यवस्था करें ।
6. सामूहिक चरागाहों एवं संरक्षित वन-क्षेत्रों का विकास करें ।

राजस्थान सरकार समय-समय पर ग्राम पंचायतों को पर्यावरण संरक्षण हेतु आवश्यक निर्देश देती रही है । विशेष सचिव एवं निदेशक, सामुदायिक विकास एवं पंचायत राज ने सरकार के निर्णयों को अवगत करवाते हुए पंचायत समितियों के प्रधानों एवं पंचायतों के सरपंचों को यह उत्तरदायित्व सौंपा है कि वे अपने क्षेत्रों में पेड़ों की अवैध कटाई एवं जंगली जानवरों के अवैध शिकार को रोकने की समुचित कार्यवाही करे ।

इसी प्रकार राजस्व विभाग ने भी चीफ फोरेस्ट कंज़रवेटर को दिशा निर्देश दिया है कि वे वनों के विकास सम्बन्धी निर्णयों के लिये ग्राम पंचायतों से परामर्श एवं स्वीकृति लेकर कार्य करें ।

अध्ययन के आधार पर ज्ञात हुआ है कि ग्राम पंचायत श्रीबालाजी पर्यावरण एवं वन संरक्षण के लिए सदैव प्रयत्नशील रही है । पर्यावरण संरक्षण एवं वन के निम्नलिखित कार्य ग्राम पंचायत द्वारा किये गये हैं :–

1-चरागाह एवं वन-क्षेत्रों का विकास

ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यावरण को बनाये रखने में चरागाहों एवं वन-क्षेत्रों का विकास सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । सरकार की विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों में इसके महत्व को स्वीकार भी किया गया है । ग्राम पंचायतों को चरागाह एवं वन क्षेत्रों के विकास के लिये उत्तरदायी बनाया जा सकता है । अध्ययन में यह देखा गया है कि नागौर जिलाधीश ने ग्राम पंचायतों को यह निर्देश दिया गया है कि चरागाह एवं वन क्षेत्रों के विकास के लिये ग्राम पंचायतें वन-विभाग को भूमि प्रदान करें । वन-विभाग इस भूमि को विकास के पश्चात् पुनः ग्राम पंचायत को सौंप देगा । ग्राम पंचायतें इस वन क्षेत्र से ईंधन एवं पशुओं के चराने की समुचित व्यवस्था कर सकेंगीं । श्रीबालजी ग्राम पंचायत ने वन विभाग को भूमि उपलब्ध करवा दी एवं वन विभाग ने इस पर वन लगाकर यह भूमि वापस ग्राम पंचायत को उपलब्ध करवा दी है ।

2-पौधरोपण एवं पौध संरक्षण

पश्चिमी राजस्थान के रेतीले क्षेत्रों में पौध रोपण एवं पौध संरक्षण पर्यावरण के लिये अत्यन्त आवश्यक है । पेड़ लोगों की जीविका के लिये ही नहीं अपितु मरुस्थल को बढ़ने से रोकने के लिये भी आवश्यक है । सरकार समय समय पर इस कार्य हेतु ग्राम पंचायतों को निर्देश एवं सहायता प्रदान करती है । ग्राम पंचायतें पौधशालाओं से पौध प्राप्त करके ग्राम के सार्वजनिक स्थानों की खाली भूमि सड़क के किनारे कुएं एवं तालाब के पास लगाती है । इन पौधों के संरक्षण की पूरी व्यवस्था करती है । इस कार्य में ग्राम पंचायत ग्राम की सामाजिक संस्थाओं एवं रुचि रखने वाले लोगों का सहयोग भी प्राप्त करती है । गांव के खाली स्थानों पर लगे पौधे इसके प्रतीक हैं ।

3-कृषि वानिकीकरण

सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि वानिकीकरण को प्रोत्साहन देने का उत्तरदायित्व ग्राम पंचायतों को सौंपा । ग्राम पंचायत अपने निवासियों को अपने कृषि भूमि पर पेड़-पौधे लगाने हेतु प्रेरित करती है । इस कार्य के लिये ग्राम पंचायत की सिफारिश पर पंचायत समिति किसानों को अनुदान भी प्रदान करती है साथ ही पौध भी उपलब्ध करवाती है ।

4-ग्राम पंचायत द्वारा अन्य संस्थाओं को सहयोग

पर्यावरण संरक्षण के कार्य में अनेक संस्थाएं प्रयत्नशील रहती हैं । इनमें वन विभाग, स्वास्थ्य एवं शिक्षा विभाग, कृषि विभाग, अनुसंधान संस्थाएं एवं कृषि विश्वविद्यालय प्रमुख हैं । राजस्थान में राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, कृषि अनुसंधान एवं शिक्षण हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसंधान केन्द्र स्थापित कर रही है । ग्राम श्रीबालाजी में भी ऐसा केन्द्र स्थापित किया जा रहा है । ग्राम पंचायत अनुसंधान केन्द्र की स्थापना हेतु पूरा सहयोग प्रदान कर रही है । यह केन्द्र कृषि अनुसंधान के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यावरण विकास हेतु भी प्रयत्न करेगी ।

ग्राम पंचायत - संस्थागत व्यवस्था

इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों के पर्यावरण एवं वानिकी प्रबन्ध में ग्राम पंचायत की महत्वपूर्ण भूमिका है । राजस्थान पंचायत राज अधिनियम तथा राज्य एवं केन्द्र सरकार के निर्देशों के अन्तर्गत भी ग्राम पंचायतों को यह उत्तरदायितव सौंपा गया है।

ग्राम पंचायत की संस्थागत व्यवस्था इस उत्तरदायित्व को पूरा करने में कहां तक समर्थ है, यह एक विचारणीय प्रश्न है ।

ग्राम पंचायत संस्थागत व्यवस्था जिसमें सरपंच, पंच एवं ग्राम सभा तथा ग्राम पंचायत स्तर पर सरकारी प्रतिनिधि ग्रामसेवक एवं पटवारी पर्यावरण एवं वन संरक्षण के लिये ग्राम पंचायत को गतिशील बनाने के लिये उत्तरदायी है । कानूनी प्रावधान इस संस्थागत व्यवस्था को पूर्ण सक्षम बनाते हैं । ग्राम पंचायत श्रीबालाजी के सरपंच, पंच एवं ग्रामसेवक से अनौपचारिक बातचीत में यह बात स्पष्ट हुई है कि वे सभी पर्यावरण एवं वन संरक्षण के प्रति सजग हैं । समय-समय पर प्रयत्न भी करते रहे हैं । अध्ययन में यह भी सामने आया है कि कुछ रुकावटें हैं जिनके कारण ग्राम पंचायतें प्रभावशाली तरीके से इस कार्य को सम्पन्न नहीं कर पातीं । ये रुकावटें निम्नलिखित हैं :–

ग्राम पंचायत के पास वनों एवं पेड़ों को नष्ट करने वालों के खिलाफ कार्यवाही करने की शक्तियां नहीं हैं ।

सफाई एवं पर्यावरण संरक्षण के अन्य कार्यों हेतु तकनीकी ज्ञान का अभाव है ।

ग्राम पंचायत के पास पर्यावरण एवं वनों का महत्व बताने के लिये प्रचार-सामग्री एवं साधनों का अभाव है ।

पंचायत के पास इतने वित्तीय स्रोत नहीं हैं कि वह पेड़ों की रक्षा, उन्हें पानी देने, वन-क्षेत्रों की रक्षा करने के लिए समुचित व्यवस्था कर सकें ।

पर्यावरण से जुड़े सरकारी विभागों के अधिकारी एवं कर्मचारी मात्र औपचारिकताएं, लक्ष्य पूरा करने में रहते हैं । उनमें इस कार्य हेतु ग्राम पंचायतों को मार्गदर्शन एवं सहयोग प्रदान करने की सक्रिय रुचि नहीं है ।

सुझाव

पर्यावरण एवं वन प्रबन्ध में पंचायत राज संस्थाओं की भूमिका को प्रभावशाली बनाने की आवश्यकता है । इस दिशा में निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं :–

1. ग्राम पंचायत को ऐसी प्रभावशाली शक्तियां दी जायं जिससे वह पेड़ों की कटाई एवं गन्दगी फैलाने वालों को दण्ड दे सकें ।
2. समुचित सफाई व्यवस्था के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग द्वारा ग्राम पंचायतों को तकनीकी सहायता एवं दिशा निर्देशन दिये जायं ।
3. पर्यावरण संरक्षण में लगी अन्य संस्थाओं एवं ग्राम पंचायत के बीच समन्वय स्थापित किया जाय ।
4. प्रचार के साधनों द्वारा पर्यावरण संरक्षण हेतु जन-चेतना विकसित करने के लिए ग्राम पंचायतों को प्रचार के साधन उपलब्ध करवाये जायं ।
5. ग्राम पंचायतों के पास सीमित वित्तीय साधन होते हैं, अतः पेड़ों को लगाने एवं उनके संरक्षण हेतु विशेष वित्तीय सहायता प्रदान की जाय ।
6. स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका को प्रोत्साहित करने हेतु ग्राम पंचायतों को पहल करनी चाहिए ।

47 विद्यापार्क एयरफोर्स सेन्ट्रल स्कूल रोड
जोधपुर (राजस्थान)

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक का नाम : हथेली पर आदमी (कविता संग्रह)
लेखिका : डॉ० शांति जैन, प्रकाशक : पराग प्रकाशन कर्णगली विश्वासनगर, शाहदरा दिल्ली- 110032, मूल्य : दस रुपये

अध्यात्म और करुणा में अटूट पारस्परिकता है । यही पारस्परिकता मानवीय संवेदन को चिरजीवंत बनाती है । तन और मन के समूचे सात्विक प्रणय-राग को इस छोर से उस छोर तक पहुंचाती है । जीवन और जीवन के मध्य जो रूखे पठार उग आते हैं, उन्हें समतल करती है । एकात्म मानववाद से मनुष्य को आत्मसात कराती है । डॉ० शांति जैन के तीसरे कविता-संग्रह और प्रकारांतर से चौथे कविता-संग्रह "हथेली पर आदमी" इसी पारस्परिकता और संवेदना का प्रतिबिंब है । संवेदनाहरण के वर्तमान में यह काव्य-प्रसारण भिन्न-भिन्न दृष्टि-पथों पर अपनी खास अहमियत रखता है और उसे स्थापित भी करता है ।

संग्रह में कुल जमा आठ कविताएं हैं, जो अपने-अपने स्तर पर मन को छूती हैं, आध्यात्मिक रसधार में भिगोती हैं और पाठक को यथार्थ का दर्पण दिखाते हुए यत्र-तत्र-सर्वत्र फैले-फूले छोर का सहज सम्मिलन कराती हैं । इसीलिए भी इन कविताओं के प्रसारण की आवश्यकता असंदिग्ध है ।

कविता का आकाश अनन्त है । यदि ऐसा न हो तो, फिर कविता क्या और कवि क्या ? डॉ० शांति जैन की कविताएं इस अनन्त का दर्पण भी हैं । इसीलिए संग्रह के अगीत भी गीत बन सकते हैं । मेरी मान्यता रही है कि 'गीत काव्य की आत्मा है । मानव-शरीर के समस्त अवयव कविता हैं । लेकिन गीत स्वतः स्फूर्ति, हृदय से फूटता है । ठीक वैसे, जैसे किसी पर्वत-शृंखला में कहीं छुपा बैठा जल-कुंड, कहीं से झरना बनकर फूटता है और असीम आनन्द से सराबोर करता है । गीत मानव-जीवन की संजीवनी है ।'

संदर्भवश "हथेली पर आदमी" शीर्षक कविता का उल्लेख उपयुक्त होगा । जितेंद्र सिंह ने इस कविता को "मुकुटमणि" संज्ञापित किया है । आप चाहें तो इसे "लघु" कविता भी कह सकते हैं, किन्तु यह महाकविता भी है ।

संग्रह की कविताओं में मानवीय संवेदना के मर्म को जो अभिव्यक्ति मिली है, वह कवयित्रियों की काव्यप्रौढ़ि का प्रमाण भी है । काठ की पालकी, ऊंचा आदमी, हारा हुआ बादशाह, शाम तुम उदास क्यों हो ?, सन्नाटा, इकतरफा रिश्ता, करुणा, शिव सत्य और सुन्दर, अव्यक्त का स्पर्श, तुम्हारा देवत्व, मैं हूं या नहीं हूं, अर्न्तज्वाला, सुख का बोझ, विश्वास, असमाप्त संस्कार इत्यादि कविताओं में आध्यात्मिक चिन्तन और चेतना के संवेगों की प्रवाहपूर्ण-प्रभावपूर्ण उत्तमोत्तम ऊंचाई की सार्थक अभिव्यक्ति हुई है ।

आज हमारे चारों ओर अविश्वास, संत्रस्त-अंधकार और अमानवीय संस्कारों की पीड़ाएं हैं । इन पीड़ाओं से आध्यात्मिक बल ही हमें मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर कर सकता है । डॉ० शांति जैन की कविताएं हमें यही आध्यात्मिक बल प्रदान करती हैं ।

ये कविताएं जीवन की उताल-तरंगें हैं । मन की पवित्रता का आध्यात्मिक स्वर हैं । मन से अधिक पवित्र संसार में अन्य कुछ भी नहीं । इस यथार्थ-धरातल पर इन कविताओं की चुम्बकीय शक्ति वर्णनातीत है । जीवन्त यथार्थ को अनुभूतिसिद्ध बनाती कुछ अभिव्यक्तियां दृष्टव्य हैं—

"चाटुकार प्रियतम-सा/छली सपना
जिस कौशल से/आदमी को
बार-बार ठगता है
उसी कौशल से/बार-बार फिर उसका
विश्वास भी जीत लेता है । (पृष्ठ 96)"

साहित्य के प्रचलित अर्थों में ये रचनाएं अगीत हैं, किंतु इनमें गीतात्मकता कहीं भी कम नहीं । लब्बुलबाब यह कि, यह काव्यकृति वर्तमान की गम्भीर आवश्यकता को पूरा करने में सफल है । इस कृति का सर्वत्र अभिनन्दन होगा ।

समीक्षक : धर्मेन्द्र त्यागी
पता : टाइप दो, बी-26/359
डी.एम.एस. कालोनी
हरिनगर, घंटाघर
नई दिल्ली-110 064

वन संरक्षण — जन सहयोग

□ भारत डोगरा □

देश में कई वन, ठेकेदारों द्वारा खरीद कर तबाह किए जा चुके हैं। लेकिन अनेक ऐसे उदाहरण भी हैं जहां निकटवर्ती गांवों के लोग हिम्मत जुटाकर पेड़ों को विनाश से बचाने के लिए आगे आए और अपने अभियान में सफल रहे हैं। इन क्षेत्रों को देखकर सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वहां के वनक्षेत्र का संरक्षण वहां के लोगों व उस क्षेत्र के लिए कितना महत्वपूर्ण साबित हुआ है। हम यहां ऐसे दो क्षेत्रों के उदाहरण दे रहे हैं।

जीतपुर-चंचली वन

बिहार के देवगढ़ जिले के मधुपुर प्रखंड में स्थित जीतपुर चंचली वन के संरक्षण में सफलता से उस अंचल के अनेक ग्रामवासियों को वन संरक्षण के लिए प्रेरणा मिली है। इस क्षेत्र में यह वन एकमात्र हरा-भरा क्षेत्र बचा था और एक दशक पूर्व इसकी रक्षा के लिए इलाके के लोगों ने जमकर अभियान चलाया। अब यह वन क्षेत्र, इस क्षेत्र की कठिन सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से जूझ रहे हजारों लोगों को भूख व गरीबी से संरक्षण प्रदान कर रहा है।

वर्ष 1980-81 में राज्य सरकार ने इस वन क्षेत्र के बड़ी संख्या में पेड़ एक ठेकेदार को नीलाम कर दिए। यह एक अत्यंत गैर-जिम्मेदारी का तथा अदूरदर्शिता का कदम था क्योंकि इस अंचल में दूर-दूर तक वन हाल के दशकों में तबाह कर दिए गए थे और लोगों की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए केवल यही वन बचा था।

इस वन में पेड़ों की नीलामी की जानकारी जब मधुपुर में रह रहे एक अवकाश प्राप्त सरकारी अधिकारी को मिली तो उन्होंने क्षेत्र के सामाजिक कार्यकर्ताओं को इस खतरे के बारे में आगाह किया और उसने इस संबंध में तत्काल कार्यवाही शुरू करने का अनुरोध किया। मधुपुर प्रखंड व निकटवर्ती क्षेत्र में सक्रिय स्वैच्छिक संगठन लोक जागृति केंद्र के कार्यकर्ताओं ने तुरन्त स्थिति की गंभीरता को समझा तथा इस वन को बचाने के लिए आस-पास के गांवों में जनजागरण प्रारंभ कर दिया। उनको जानकारी मिली कि हालांकि ठेकेदार को फलदार वृक्ष काटने की अनुमति नहीं दी गयी है परन्तु वह इन वृक्षों की कटाई भी करा रहा था क्योंकि उसका विश्वास था कि इस दूरदराज वन क्षेत्र में उसके अवैध काम को देखने कौन आएगा।

प्रारंभ में लोक जागृति केंद्र तथा एक अन्य संस्थान ;मजदूर किसान समिति के अभियान पर ग्रामवासियों ने ध्यान नहीं दिया क्योंकि उनका मानना था कि सरकार ने जब ठेका दे ही दिया है तो वे क्या कर लेंगे। कार्यकर्ताओं ने लोगों को समझाया कि कई ग्रामीणों ने रेशम के कीड़े पालने के लिए ऋण लिए हैं और अगर पेड़ कट गए तो वे यह काम कैसे करेंगे। ऐसा नहीं हो सकता कि सरकार एक तरफ तो पेड़ आधारित योजना शुरू करे और दूसरी तरफ पेड़ ही कटवा दे। पेड़ न रहे तो लोग काम कैसे करेंगे और जब काम नहीं होगा तो वे ऋण कैसे चुकाएंगे। कार्यकर्ताओं के इस प्रचार का लोगों पर प्रभाव हुआ। उन्हें गढ़वाल हिमालय में चिपको आंदोलन और उसकी सफलता का उदाहरण भी दिया गया।

स्थानीय लोगों को जल्दी ही खतरा समझ में आ गया और उन्होंने पेड़ों की कटाई के विरुद्ध बुलायी जाने वाली मीटिंगों में आना शुरू कर दिया। फिर जगदीशपुर कस्बे में जाकर लोगों ने प्रदर्शन भी किए और अधिकारियों को जता दिया कि वे वन को हरगिज़ कटने नहीं देंगे।

इसके बाद ग्रामवासी जंगल में पहुंचकर ठेकेदार के आदमियों के आमने-सामने हो गए। ठेकेदार के अधिकांश आदमी स्थानीय लोग ही थे। ये लोग अपने लोगों के सामने काम न करने पर मजबूर हो गए। ठेकेदार लाचार हो गया और उसने पेड़ बचाओ अभियान के अग्रणी कार्यकर्ताओं को मुकदमों में फंसाने की कोशिश की।

इन कार्यकर्ताओं के दो ही जवाब थे। उनका कहना था कि वे कानून के अनुसार अभियान चला रहे हैं और ठेकेदार फलदार पेड़ कटवा रहा है जो कि गैर-कानूनी है। कार्यकर्ताओं का दूसरा तर्क यह था कि लोगों ने रेशम के कीड़े पालने के लिए ऋण लिए हैं और उसके लिए पेड़ों को बचाना आवश्यक है। मुकदमे कुछ समय तक चलते रहे। लेकिन अभियान को व्यापक जनसमर्थन प्राप्त था और कार्यकर्ताओं के खिलाफ

कार्रवाई संभव नहीं थी । इस प्रकार वन कटने से बच गया ।

अब उस अभियान को याद करके लोग कहते हैं कि अगर उन्होंने वन को बचाने के प्रयास नहीं किए होते तो बाद में पड़े भयंकर सूखे से बच नहीं सकते थे । सूखे के दौरान उन्होंने इस वन के फलदार पेड़ों के सहारे समय काटा । वन बचने के कारण वह झरना भी बच गया जो लोगों के लिए पानी का महत्वपूर्ण स्रोत था । इसके अतिरिक्त जंगल से उन्हें दैनिक जरूरत की अनेक अन्य चीजें उपलब्ध होती हैं जैसे जलावन, पशुओं के लिए चारा, बीमारी में काम आने वाली जड़ी-बूटियां, दातुन, वर्षा से बचाव के लिए बड़े-बड़े पत्ते जिन्हें ओढ़ कर लोग खेतों में बारिश के दौरान काम करते हैं । एक विशेष प्रकार की जली हुई लकड़ी का साबुन की तरह इस्तेमाल किया जाता है ।

इस वन के संरक्षण में सफलता के बाद अब लोगों में पर्यावरण के महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए शिविर लगाए गए हैं व पदयात्राओं का आयोजन किया गया है । जीतपुर वन अभियान की सफलता से प्रेरणा लेकर देवगढ़ व गिरिडीह जिलों में भी वन संरक्षण के अभियान चलाए जाने की रिपोर्ट मिली है ।

लेकिन जीतपुर की सफलता ने कुछ दूरदर्शी लोगों को चिंतित भी किया है । उनका कहना है कि अन्य इलाकों के वन लुप्त होने के कारण वहां के लोग जीतपुर वन पर आश्रित हो रहे हैं । जीतपुर वन पर लोगों की मांग पूर्ति का बढ़ता दबाव अग्रणी कार्यकर्त्री मूर्ति देवी के लिए चिंता का कारण बन गया है । उनका कहना है कि जीतपुर के संरक्षण के लिए अब नियोजित व निरंतर प्रयास करने होंगे । बाकी लोग उनकी इस चिंता से सहमत हैं ।

अदवाणी गांव

उत्तर प्रदेश के पर्वतीय टिहरी गढ़वाल जिले में अदवाणी गांव के पास साल, चीड़, दयार, देवदार पेड़ों का बड़ा सुंदर वन है । यह एक सुरक्षित वन है । वर्ष 1977 में जब राज्य सरकार ने इस वन के 600 से अधिक पेड़ एक ठेकेदार को नीलाम कर दिए तो अदवाणी व आस पास के गांवों के लोगों ने वन अधिकारियों, पुलिस व ठेकेदार के आदमियों से आमना-सामना किया । ये लोग इन पेड़ों से चिपक गए और इन्हें कटने नहीं दिया । सरकार को मजबूर होकर नीलामी रद्द करनी पड़ी ।

इस घटना के पंद्रह वर्ष बाद अब अदवाणी में स्थिति क्या है ? लोग अपने इस सफल अभियान को अब भी याद करते हैं । सरकार ने उस समय यह तर्क दिया था कि उसका कुछ चुने हुए पेड़ों को ही कटवाने का इरादा है और इससे कोई नुकसान नहीं होगा बल्कि नए पेड़ उगने में बहुत सहायता मिलेगी । दरअसल 1977 में इस घटना से पूर्व भी सरकार ने इस वन के एक हिस्से में कुछ चुने हुए पेड़ कटवाए थे । ग्रामवासियों का कहना है कि इस हिस्से में नए पेड़ उगने की दर व प्रक्रिया उस हिस्से की तुलना में बहुत ही कम व धीमी है जिसमें उन्होंने पेड़ों की कटाई को आंदोलन करके रुकवा दिया था ।

आज इस घने, मनोरम वन के आस-पास के हजारों लोगों को ईंधन व चारा मिल रहा है व भयंकर सूखे का सामना करने में सहायक सिद्ध हुआ है । दूर-दराज के गांवों से लोग सूखे के दौरान यहां ईंधन, चारा, घास लेने आते थे । अगर उस समय अदवाणी गांव के लोग इस नीलामी को रद्द करने के लिए आंदोलन न करते तो दस-पंद्रह वर्षों में यह वन नष्ट हो गया होता । सरकार बाकी वनों के लिए भी नीलामी करती रहती तथा अन्य वनों का भी यही हाल होता । वन कम होने से बाकी बचे वनों पर लोगों की आवश्यकता का दबाव बढ़ता चला जाता और ये वन जल्दी समाप्त हो जाते ।

अदवाणी गांव के लोगों की एकजुटता व दृढ़ निश्चय के कारण अब इलाके के लोग अपनी वन संबंधी आवश्यकताओं के बारे में निश्चिंत हैं । ईंधन व चारा लाने में कम समय लगता है । लोग अधिक पशु पाल सकते हैं । जमीन, मिट्टी का खिसकना, बहना, पेड़ों ने रोक दिया है । हाल में अन्य इलाकों में पूरा सूखा रहा, बिल्कुल वर्षा नहीं हुई लेकिन अदवाणी में इस वन के कारण कुछ वर्षा हुई ।

लेकिन कुछ समस्याएं भी पैदा हुई हैं । कई लोगों की शिकायत है कि मकान आदि की मरम्मत के लिए उन्हें पर्याप्त लकड़ी नहीं मिलती । उनका कहना है कि पिछले दो-तीन वर्षों में उन्हें कोई लकड़ी इस काम के लिए नहीं दी गयी है । पारंपरिक "मुफ्त अनुदान" के अंतर्गत भी कोई लकड़ी नहीं दी गयी । कई लोगों का कहना है कि उनके मकान बुरी, जर्जर हालत में हैं और उनकी मरम्मत नहीं हो पा रही है । इस गांव को पानी सप्लाई करने वाली पाइप लाइन भी संतोषजनक नहीं है । इसमें पानी केवल बूंद-बूंद आता है । यह पाइप लाइन

शेष पृष्ठ 46 पर

सामाजिक वानिकी एवं पर्यावरण संरक्षण

□ महेशचन्द सिंघल □

वन अमूल्य प्राकृतिक सम्पत्ति है। वन आर्थिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं हैं अपितु वातावरण को स्वच्छ रखने, रेगिस्तान का प्रसार रोकने, मिट्टी संरक्षण, बाढ़ नियंत्रण, वर्षा आमन्त्रण व वायु को शुद्ध करने के लिए भी वनों का होना अनिवार्य है।

विगत दशकों में मानव ने भौतिकता की अंधी दौड़ में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वनों का अंधाधुन्ध शोषण किया है जिससे पारिस्थितिक असन्तुलन उत्पन्न हो गया है। वन ह्रास से ग्रामीण क्षेत्रों में, एक ओर पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हुई है, दूसरी ओर ईंधन व जलाऊ लकड़ी की कमी, मिट्टी संरक्षण, बाढ़ प्रकोप, चारा व इमारती लकड़ी की भी कमी उत्पन्न हो गई है।

अतः सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में वृक्षारोपण को प्रोत्साहित व वन संपदा को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए कई कार्यक्रमों का शुभारम्भ किया है जिसमें सामाजिक वानिकी योजना भी एक है, इसने आशातीत सफलता प्राप्त की है।

सामाजिक वानिकी की विधिवत शुरुआत

देश में सामाजिक वानिकी योजना की विधिवत शुरुआत राष्ट्रीय कृषि आयोग की सिफ़ारिश पर 1978 में की गई। यह योजना जन सहयोग पर आधारित वनारोपण की योजना है। यह राज्य द्वारा प्रदत्त विभिन्न प्रकार की सुविधाएं प्राप्त कर, समुदाय द्वारा सामुदायिक भूमि पर वृक्षारोपण की योजना है। अतः इसका उद्देश्य जन साधारण द्वारा जनता के लिए सघन वन का सृजन करना ही है।

सामाजिक वानिकी के उद्देश्य

सामाजिक वानिकी योजना के निम्न उद्देश्य हैं :-

1. ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन की पूर्ति व गोबर को खाद के रूप में प्रयोग करना।
2. छोटी इमारती लकड़ियों की पूर्ति।
3. चारे की पूर्ति।
4. खेत की फसल को तेज हवाओं के प्रकोप से बचाना।
5. मनोरंजन की सुविधाएं प्रदान करना।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राष्ट्रीय कृषि आयोग ने सामाजिक वानिकी को निम्न चार भागों में विभक्त किया :-

1. कृषि वानिकी, 2. विस्तार वानिकी, 3. निम्न कोटि के वनों का प्रत्यारोपण, 4. मनोरंजन वानिकी।

सामाजिक वानिकी योजना में राज्य सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं जिसमें आर्थिक सहायता निःशुल्क पौध वितरण, भूमि पट्टे पर देना, विपणन सुविधा मुख्य हैं। अतः यह जन साधारण के सहयोग से कृषि अयोग्य भूमि, बंजर व परती भूमि, सामुदायिक भूमि, सड़क, रेल मार्ग व नहरों के किनारे वृक्षारोपण की योजना है। इस योजनान्तर्गत ग्राम पंचायतों द्वारा भी वनों का विकास किया जाता है। अतः जनसहयोग से संचालित इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण जन समुदाय की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति है साथ ही यह मिट्टी के कटाव, बाढ़ व सूखा नियन्त्रण तथा पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में भी सहायक सिद्ध होगी।

सामाजिक वानिकी के लिए विदेशी सहायता

सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत विभिन्न कार्यक्रमों के संचालन हेतु विश्व बैंक सहित अन्य अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं आर्थिक सहयोग प्रदान करती हैं। विभिन्न राज्यों में स्वीडिश अन्तः विकास परिषद, कनाडियन अन्तः विकास परिषद, यू.के. ओवरसीज़ विकास एजेन्सी आदि द्वारा सामाजिक वानिकी संचालन हेतु कई करोड़ डालर का आर्थिक सहयोग प्रदान किया गया है।

वृक्ष पट्टा योजना

सामाजिक वानिकी को बढ़ावा देने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार ने वृक्ष पट्टा योजना प्रारम्भ की है। इसके अन्तर्गत गांव के निर्बल आय वर्ग के लोगों, लघु व सीमान्त कृषकों, भूतपूर्व सैनिकों को वृक्षारोपण हेतु सार्वजनिक भूमि अस्थायी पट्टे पर दी जाती है। ऐसी भूमि पर लगाये गये वृक्षों पर उगाने वाले का अधिकार होता है यद्यपि भूमि का स्वामित्व पूर्ववत् अक्षुण्ण रहता है।

क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन

सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत शीघ्र लाभ प्रदान करने वाले वृक्षों पर विशेष जोर दिया जा रहा है तथा वन विभाग ऐसे पौधों के वितरण की व्यवस्था निःशुल्क या रियायती कीमत पर

करता है, इसके लिए जगह-जगह पौधशालाएं लगायी गयी हैं।

यद्यपि सामाजिक वानिकी का परम उद्देश्य जन समुदाय के सहयोग से सामुदायिक व सार्वजनिक भूमि पर वृक्षारोपण को बढ़ावा देना है जिससे पर्यावरण सुधार के साथ-साथ चारा, ईंधन, इमारती लकडी व उत्तम खाद उपलब्ध हो सके। लेकिन यह देखा गया है कि अधिकांश राज्यों में कृषि वानिकी के अन्तर्गत यूकेलिप्ट्स वृक्ष का रोपण किया गया है। जो इन उद्देश्यों को पूरा करने में असमर्थ है, साथ ही देश की जलवायु भी इस वृक्ष के अनुकूल नहीं है।

विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, तमिलनाडु, हरियाणा आदि राज्यों में बड़े भूमिपतियों द्वारा मुद्रादायिनी फ़सल के रूप में इसका रोपण किया गया है, लेकिन इस वृक्ष की खेती सामाजिक वानिकी उद्देश्यों को पूरा नहीं करती।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सामाजिक वानिकी योजना अपने उद्देश्य प्राप्ति में सफल नहीं हो पायी है। वस्तुतः यह एक जनउपयोगी व विकासोन्मुखी कार्यक्रम है। आवश्यकता है इसके सफल संचालन की, इसके लिए अधिकाधिक जनसहयोग व जन चेतना जागृत करने की।

इस कार्यक्रम के सफल संचालन होने पर देहाती क्षेत्रों के लिए चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी की आपूर्ति सम्भव होगी व रोजगार का सृजन होगा तथा ग्रामीण जनों का नगरों की ओर पलायन रुकेगा। अतः यह एक उपयोगी व आशापूर्ण योजना है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यावरण सन्तुलन स्थापित होगा, मानव व पशु-पक्षी शुद्ध हवा में श्वास ले सकेंगे व चारों ओर खुशहाली, उल्लास का वातावरण होगा।

व्याख्याता, भूगोल,
राजकीय कला महाविद्यालय
अलवर (राज.)

पृष्ठ 44 का शेष

गांव से करीब 5 किलोमीटर दूर जल-स्रोत से जुड़ी हुई है लेकिन सूखे के कारण यह स्रोत काफ़ी सूख गया है।

अब लोग वन संरक्षण के प्रति जागरूक हो रहे हैं। जलग्रहण क्षेत्रों की तरफ अधिक ध्यान दिया जा रहा है। पेड़ लगाने के कार्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं। स्त्रियां अब वनों, पेड़ों के महत्व व उपयोग के बारे में अधिक सचेत हैं।

अनुवाद : ओम प्रकाश दत्त

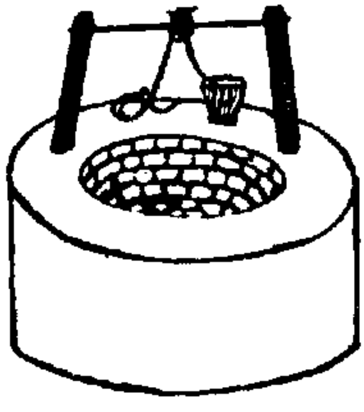

दिल्ली के गांवों में खाद्य सामग्री का वितरण

□ कमल कुमार गुप्ता □

आज के मशीनी युग में मानव की आवश्यकताएं बहुत बढ़ गई हैं । लेकिन उनमें से मुख्य रूप से "रोटी, कपड़ा और मकान" की आवश्यकता तो हर प्राणी को है । इन सब में यदि दृष्टिपात किया जाए तो भोजन की आवश्यकता अत्यधिक है । इसके बिना आदमी का जीना मुश्किल है । इसके लिए "भूखे भजन न होइ गोपाल, यह ले अपनी कंठी माला ।" इन दो पंक्तियों का सहारा यदि लें तो यही स्पष्ट होता है कि भोजन हर व्यक्ति के लिए आवश्यक ही नहीं बल्कि जीने का एक साधन है । इसी संदर्भ में मैंने सोचा क्यों न दिल्ली के गांवों में उचित दर दुकानों पर राशन की व्यवस्था पर कुछ जानकारी प्राप्त कर ली जाए ।

हर नई सरकार अपने तरीके से कुछ नई नीतियों की शुरुआत करती है । ये नीतियां कितनी सफल या असफल होती हैं यह बुद्धिजीवी वर्ग के लिए कोई जटिल प्रश्न नहीं है । पर यदि इसे आम आदमी की जिन्दगी में गहरे उतर कर देखा जाए तब यथार्थ का अधिक स्पष्ट एवं प्रभावी ज्ञान होता है ।

दिल्ली के गांवों का दौरा करते वक्त वर्तमान सरकार की इस नई राशन प्रणाली का व्यवस्था पर कितना असर पड़ा है तथा दिल्ली के गांव वासी इससे कितना प्रभावित हुए हैं, यह खुलकर सामने आया है । गांव वाले सरकार की इस नई वितरण व्यवस्था से बहुत खुश हैं पर साथ-साथ आशंकित भी हैं कि यह व्यवस्था कितने दिन ठीक-ठाक चल पायेगी । लोग प्रायः चीनी के वितरण को लेकर अधिक परेशान होते थे क्योंकि गेहूं, चावल आदि कुछ रोजमर्रा के काम में आने वाली खाद्य सामग्री यदि उन्हें गांव की राशन की दुकान से उपलब्ध भी नहीं होती थी, तो वे घर से या फिर आपसी सहयोग से इस समस्या का सामना कर लेते थे । हां, चीनी के लिए सभी को लगभग राशन की दुकान पर ही निर्भर रहना पड़ता था लेकिन कई बार स्थिति विकट हो जाती थी । गांव वाले इस बात के लिए सरकार को और बेईमान दुकानदारों को दोष देते थे । अब सरकार की इस नई प्रणाली के तहत उन्हें न केवल चीनी बल्कि गेहूं, चावल, तेल आदि प्रचुर मात्रा में अब सरलता से उपलब्ध हो रहे हैं । गांव वालों से पूछने पर पता चला कि सरकार की वर्तमान राशन वितरण व्यवस्था से वे बहुत संतुष्ट हैं तथा बराबर सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट रखने की आशा करते हैं ।

दूसरी ओर राशन दुकानदारों के इस संदर्भ में अपने विचार हैं । वे अनियमित व अपर्याप्त वितरण के लिए सरकारी भ्रष्ट तंत्र को जिम्मेदार ठहराते हैं । नये राशनकार्डों का बड़ी संख्या में बनना, समय पर राशन की आपूर्ति न होना तथा अच्छी खाद्य सामग्री का उपलब्ध न होना भी इसी समस्या में शामिल था । अब नई वितरण प्रणाली के लागू होने पर यह समाप्त हो गया है । धीरे-धीरे पूर्ण सुधार भी हो जायेगा । अब स्थिति पहले से काफी बेहतर है । सरकार प्रचुर खाद्य सामग्री उचित मात्रा एवं अच्छी किस्म में उपलब्ध कराने का पूर्ण प्रयास कर रही है ।

दिल्ली के गांवों में राशन वितरण की नई प्रणाली एवं उससे जुड़े गांववासियों तथा राशन विक्रेताओं के विचारों के संबंध में सरकारी तंत्र भी काफी हद तक स्वयं को दोषी मानता है । हां, सरकार के समक्ष भी अनेक प्रकार की समस्याएं रही हैं । इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता । परन्तु अब इस नई राशन वितरण प्रणाली को लेकर कर्मठ सरकारी अधिकारियों व कर्मचारियों में बहुत जोश है । भविष्य में इसके सुखद और बेहतर परिणामों के विषय में सरकार आशावान है ।

राशन सामग्री के सीधे वितरण से जहां बीच में पड़ने वाले कुछेक गलत हाथों का हस्तक्षेप समाप्त हुआ है वहीं राशन सामग्री अब ठीक समय पर उचित किस्म और प्रचुर मात्रा में गांव वालों को उपलब्ध हो रही है । कुछेक अपवादों को छोड़कर नई राशन वितरण व्यवस्था से दिल्ली के गांववासियों तथा राशन विक्रेताओं एवं सरकारी तंत्र में परस्पर सहयोग बढ़ा है । मतभेद कम हुए हैं । निश्चित रूप से समस्याओं से जूझती सरकार द्वारा बहुत ही सूझ-बूझ से उठाया गया यह बड़ा साहसिक कदम था जिसकी पूर्ण सफलता के प्रति निष्पक्ष रूप से आशा की जा सकती है ।

फ्लैट नं. 4
थाना कश्मीरी गेट, दिल्ली

पुस्तक प्रकाश है

हमारे नए हिन्दी प्रकाशन

जीवनियां

	रु. पैसे
गोपीनाथ बड़दलोई	
-डॉ० बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य	16.00
आचार्य नरेन्द्र देव	
-भगवती शरण सिंह	25.00
ज्योति प्रसाद अग्रवाल	
-ईश्वर प्रसाद चौधरी	15.00
मैडम भिखईजी रुस्तम कामा	
-खोरशेद अदी शेठना	20.00
रवीन्द्र नाथ ठाकुर	
-हिरण्य बनर्जी	30.00

लोक कथाएं

असली जीमाकडे तथा अन्य राजस्थानी लोककथाएं	
-विमला मेहता	15.00
स्वर्ण भूमि की लोक कथायें	
-दुर्गा प्रसाद नौटियाल	9.50
बंगाल की लोक कथाएं	
-आशिस सान्याल	10.50
उत्तर प्रदेश की लोक कथाएं (भाग-2)	
-स्वराज्य शुचि	10.50
सिन्धी लोक कथाएं	
-सम्पादन : रामेशवर उपाध्याय	15.00

बाल साहित्य

	रु. पैसे
हमारे स्काउट गाइड	
-रमाशंकर मिश्र	12.00
काकेशस का कैदी	21.50
देश-विदेश के चिड़ियाघर	
-डॉ. अशोक कुमार मल्होत्रा/श्याम सुन्दर शर्मा	14.00

विविध

भारत की महान् नारियां (रानी दुर्गावती)	
-शशि प्रभा	10.00
एकता की बोलती तस्वीरें	
-व्यथित हृदय	8.00
आदि शंकराचार्य "जीवन और संदेश"	
-डॉ. दशरथ ओझा	15.00
प्राचीन भारत के प्रेक्षागृह	
-डॉ. रेखा रस्तोगी	20.00
भारतीय हस्तशिल्प परम्परा	
-कमला देवी चट्टोपाध्याय	25.00
दिल्ली : अतीत के झरोखे से	
-मंजू पाण्डेय	20.00
स्वतंत्रता संग्राम के पच्चीस वर्ष (1921-1946)	
अरुण चन्द्र गुहा	95.00
नेता जी ने कहा था	1.00

प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित सभी पत्रिकाओं में से किसी एक पत्रिका का वार्षिक ग्राहक बन जाने पर समस्त प्रकाशनों की खरीद पर 10 प्रतिशत की छूट विभिन्न विषयों पर भारत की सभी भाषाओं में उपयोगी पुस्तकें उपलब्ध हैं ।

1.00 रुपये से कम आदेश पर पंजीकरण शुल्क (रजिस्ट्रेशन फीस) अतिरिक्त भेजना होगा । पुस्तकें स्थानीय पुस्तक विक्रेता से लें अथवा सीधे लिखें ।

व्यापार व्यवस्थापक

विक्रय केन्द्र, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110 001.

सुपर बाजार दूसरी मंजिल कनॉट सर्कस, नई दिल्ली	बिहार स्टेट को-आपरेटिव बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800 004	कामर्स हाउस (दूसरी मंजिल) करीम भाई रोड, बेलार्ड पियर, बम्बई-400 038	10-बी, स्टेशन रोड लखनऊ-226 019
एल.एल.ए. ऑडिटोरियम, अन्ना सलाई, मद्रास-600 002.	स्टेट आर्कीलॉजिकल म्यूज़ियम बिल्डिंग पब्लिक गार्डन, हैदराबाद-500 004	8, एसप्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700 069	प्रेस रोड त्रिवेन्द्रम-695 001

कृषि और वानिकी : नये दृष्टिकोण की आवश्यकता

□ डॉ० विनेश मणि □

मिट्टी, जल तथा वायु हमारे पर्यावरण के अमूल्य घटक हैं। वनस्पतियों, जीवों और यहां तक कि स्वयं मनुष्य का जीवन इन संसाधनों पर ही निर्भर करता है। आज यह समय की मांग है कि इन संसाधनों का वैज्ञानिक ढंग से प्रबन्ध किया जाये। अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के साथ-साथ पर्यावरण को भी सुरक्षित बनाये रखा जाये। आज जो भूमि की उत्पादकता में कमी देखने को मिल रही है उसका मुख्य कारण है पारिस्थितिकी के संतुलन की परवाह किये बिना खेती करना है। एक अनुमान के अनुसार इस सदी के अन्त तक भारत की आबादी लगभग 100 करोड़ हो जाएगी जिसके लिये 24 करोड़ टन खाद्यान्न, 3.3 करोड़ टन दालें, 2.6 करोड़ टन तिलहन, 33 करोड़ टन जलावन लकड़ी की आवश्यकता होगी। इन आवश्यकताओं की पूर्ति अपने यहां उपलब्ध भूमि एवं जल संसाधनों के समुचित विकास एवं प्रबन्ध पर निर्भर करती है। सिर्फ उत्तर प्रदेश की ही यदि बात की जाये तो यहां लगभग 12.3 लाख हैक्टेयर क्षेत्र बीहड़ एवं खड्ड के रूप में 12.0 लाख हैक्टेयर क्षेत्र जल भराव एवं 25 लाख हैक्टेयर क्षेत्र भारी कटाव, रेह, ऊसर, जलभराव, झूम खेती एवं मरुस्थलीय समस्याओं से ग्रसित है।

जहां तक प्रति व्यक्ति भूमि का सवाल है तो इस समय प्रति व्यक्ति के हिस्से में 0.9 हैक्टेयर भूमि आती है। 20वीं शताब्दी के अन्त तक यह 0.5 हैक्टेयर प्रति व्यक्ति रह जायेगी। इस तरह हम कह सकते हैं कि हमें बढ़ती हुई आबादी के लिये अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता है। यही नहीं, उपलब्ध उत्पादक भूमि को अनुत्पादक होने से बचाना है। देश के बंजर या परती पड़े हुये भूखण्डों के सुधार तथा उसे उपयोग में लाने के लिये मई, 1985 में "राष्ट्रीय परती भूमि विकास बोर्ड" की स्थापना की गयी है। इस बोर्ड ने सम्पूर्ण बंजर भूमि को दो प्रकार से विभाजित किया है (1) कृषि के योग्य बंजर भूमि तथा (2) कृषि के अयोग्य बंजर भूमि।

कृषि के योग्य बंजर भूमियों को विभिन्न मृदा एवं जल-संरक्षण विधियों द्वारा खेती हेतु उपयोग में लाया जा सकता है। कृषि के अयोग्य बंजर भूमि को कृषि वानिकी हेतु इस्तेमाल करना होगा। "नेशनल रिमोट सेन्सिंग एजेन्सी" द्वारा उपलब्ध आंकड़ों से ज्ञात हुआ है कि भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 11 प्रतिशत भू-भाग ही वनों से ढका है जबकि 1979 के "नेशनल कमीशन आन एग्रीकल्चर" की रिपोर्ट के अनुसार देश के मूल भौगोलिक क्षेत्रफल का 33 प्रतिशत हिस्सा वनाच्छादित होना चाहिये। इस तरह देश के लगभग 1000 लाख हैक्टेयर भाग में वन होने चाहिये।

खाद्यान्न उत्पादन पर अधिक ध्यान देने के फलस्वरूप वनों की भूमि पर भी खेती की जाने लगी। इन भूमियों पर खेती करने से लाभ के बजाय हानि अधिक हुई। एक अनुमान के अनुसार प्रति वर्ष 60 करोड़ टन मिट्टी अन्य खनिज तत्वों के साथ कटाव के द्वारा बह जाती है। बांध, नालों और तालाबों में मिट्टी जम जाने से बाढ़ आ जाती है जिसके फलस्वरूप मनुष्यों और पशुओं की भारी क्षति के साथ ही उपजाऊ क्षेत्रों में भी उत्पादन का नुकसान होता है।

सूखा, बाढ़, अकाल एवं प्रदूषण से बचाव के लिये तथा वनों की कमी को पूरा करने के लिये खाली पड़ी बंजर/परती/ऊसर भूमि, ग्राम समाज की भूमि, सड़कों, नहरों तथा रेल्वे लाइनों के किनारे वृक्षों का रोपण किया जाना चाहिये। वृक्षारोपण की सफलता प्रजातियों के सही चुनाव, रोपण के सही तरीके तथा देख-रेख पर निर्भर करती है। भूमि की उपयुक्तता एवं अपनी आवश्यकता के आधार पर वृक्षों का चयन करना चाहिये।

देहरादून के केन्द्रीय मिट्टी और पानी सर्वेक्षण अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थान द्वारा की गयी खोजों से पता चला कि अगर खेतों के पास ऊंचे-ऊंचे पेड़ लगाये जायें तो 20 मी. की दूरी से भी वे खेत में उगी फसल की पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं। लेकिन अगर छोटे-छोटे पेड़ लगाये जायें तो उनसे खेत की उत्पादकता पर कोई प्रतिकूल असर नहीं पड़ेगा। शोधा के पश्चात् यह भी पाया गया है कि "सुबबूल" की दो कतारों के बीच में फसलें ली जायें तो लाल चकला मिट्टी में बिना सुबबूल वाली फसल की तुलना में सुबबूल वाली फसल से ज्यादा उत्पादन प्राप्त होता है, सबसे अधिक पैदावार अरहर और सुबबूल की मिली-जुली खेती से हुई और उसके बाद

अरण्डी से और सबसे कम ज्वार से प्राप्त हुई ।

इसी प्रकार झांसी स्थित भारतीय चरागाह और चारा अनुसंधान संस्थान में पिछले कई वर्षों से वन-कृषि से सम्बन्धित कई प्रयोग किये गये हैं। "लूसीना लूकोफिला" और "सस्बेनिया इजिप्टियाका" के साथ तिल, मूंगफली और अरहर की खेती की गयी सुबबूल के साथ खेती करने पर तिल की बहुत अच्छी पैदावार प्राप्त हुई ।

हरियाणा, राजस्थान और गुजरात के शुष्क क्षेत्रों में किसान फसल के साथ-साथ बारानी में 50 से 150 वृक्ष खेजरी (प्रोसोपिस सिनेरारिया), बबूल, महिरन्थ (एलेन्थस एकसेला) उगाते हैं, जिससे उन्हें बाजरा, मोठ, ग्वार, मूंग आदि फसलों के साथ वृक्षों से हमें चारे के रूप में पत्तियों और जलाने के लिये लकड़ी मिल जाती है ।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वानिकी को कृषि के साथ शामिल करके न केवल अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है बल्कि पर्यावरणीय संतुलन बनाये रखने में भी मदद मिलेगी ।

35 कृषि अनुसंधान परिषद्
लखनऊ

सही मार्ग ! **सही दिशा !!**

आपका परिश्रम आपकी सफलता

कमीशन एण्ड कॉम्पिटिशन फोरम

हमारी विशेषताएं

- संघ लोक सेवा आयोग व उ.प्र., म.प्र., बिहार और राजस्थान लोक सेवाओं के लिए भरपूर अध्ययन सामग्री
- अन्य परीक्षाओं पर भी ध्यान
- अनुभवी व सुयोग्य लेखकों की प्रस्तुति
- समय पर आपके लिए प्रस्तुत
- सभी विषय वस्तुओं का प्रतियोगात्मक दृष्टिकोण से विश्लेषण ।
- समय-समय पर विशेष पाठ्य सामग्रियों के साथ

चन्दे की दरें

एक प्रति	–	10.00 रु.
अर्द्धवार्षिक	–	50.00 रु.
वार्षिक	–	90.00 रु.

नोट : (i) सदस्यता शुल्क की राशि सिर्फ बैंक ड्राफ्ट/मनी ऑर्डर द्वारा ही भेजें ।
(ii) बैंक ड्राफ्ट कमीशन एण्ड कॉम्पिटिशन फोरम के नाम से होनी चाहिए जो नई दिल्ली में भुगतेय हो ।

पता

कमीशन एण्ड कॉम्पिटिशन फोरम

सी-68, जलवायु विहार
सेक्टर-21
नोएडा-201301

वन और कृषि

□ कु. नीलिमा सिरोठिया □

अन्नाद भवन्ति भूतानि पर्जन्यान्न संभवः ।
यज्ञाद भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥

गीता में कहा गया है "अन्न से प्राणी होते हैं, वर्षा से अन्न पैदा होता है, यज्ञ से वर्षा और यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है ।" इसी प्रकार कहा गया है कि वन ही जीवन है । वन यदि सुरक्षित रखे जायें तो वर्षा समय पर होगी अतिवृष्टि या सूखा जैसी स्थिति का सामना नहीं करना पड़ेगा । वनों का मानव जीवन में बहुत अधिक महत्व है । ये हमें एक वरदान के रूप में प्राप्त हैं । भारतीय साहित्य भी प्राचीनकाल से ही वनों के वैभव को स्वीकार करता रहा है और आज भी स्वीकार करता है । वनों ने शांति का व उत्साह का रूप लेकर आध्यात्मिकता का विकास किया है । वन प्रत्येक दृष्टि से अपरिहार्य व उपयोगी हैं चाहे देश उद्योग प्रधान हो, चाहे कृषि प्रधान, वनों का अपना विशिष्ट महत्व है । वनों का कृषि से गहरा संबंध है ।

भारतीय कृषि वर्षा पर निर्भर है, वर्षा पर वनों का विशेष प्रभाव पड़ता है । वन मिट्टी के कटाव को रोकने में सहायक होते हैं तथा भूमि के उपजाऊ बनाने में सहायक होते हैं । घने वनों में विभिन्न प्रकार की पत्तियां, बीज आदि गिरकर कुछ समय में सड़ गल जाते हैं जो खाद के रूप में परिवर्तित होकर कृषि उपज हेतु अत्यन्त लाभकारी होते हैं । घने वनों से वर्षा का पानी रुक जाता है जो बाद में कुंओं का रूप लेकर सिंचाई के काम आता है ।

परम्परा और इतिहास दोनों की ही दृष्टि से कृषि और वनों को एक दूसरे का प्रतियोगी समझा जाता है, उनकी पूरक गतिविधियों के रूप में उन्हें नहीं माना जाता । संसार भर में कृषि के लिए वनों को साफ किया गया । भारत भी इस नीति का अपवाद नहीं रहा । सन् 1894 में जो पहली राष्ट्रीय वन नीति निर्धारित की गई थी उसमें भी कुछ सुरक्षा को छोड़कर स्थायी कृषि के लिए कीमती वनों को काम में लाने की व्यवस्था की गई । किसानों ने इन व्यवस्थाओं के बारे में यही सोचा कि ये वन तो केवल हानिकारक चिड़ियों और पशुओं को ही आश्रय देते हैं । फसलों की जड़ें इनसे होड़ लेती हैं, वृक्ष छाया तो देते हैं पर इस प्रकार से सूरज की रोशनी से जो कि कृषि उत्पादन के लिए आवश्यक है फसलों को वंचित करते हैं । किसान वृक्षों को फसल का शत्रु मानते हैं, वे यह नहीं समझते कि प्रकृति में प्रतियोगिता की तुलना में सहयोग कहीं अधिक शक्तिशाली होता है ।

प्रकृति का वरदान

प्रकृति में एक ऐसी व्यवस्था है जिससे आवश्यकतानुसार निरन्तर रोकथाम और संतुलन बना रहता है । बहुत ही कम किसान यह समझ पाते हैं कि वन मानवों के लिए खाने की चीजें पशुओं के लिए चारा पैदा करने, विशेष तरीकों से खेती बाड़ी की रक्षा करने और रेशे पैदा करने व दूसरी जंगली चीजें पैदा करने के काम आते हैं । ग्रामीण अर्थव्यवस्था में तो वनों का महत्वपूर्ण योगदान है ।

वृक्षों की रक्षादायिनी छाया में ही खेती फल-फूल सकती है । लेकिन समृद्ध वन से ही कृषि जीवित रह सकती है । प्रकृति ने भारत को तरह-तरह के पेड़-पौधे उपहार में दिये हैं, जिनका मुकाबला दुनिया भर में किसी से नहीं किया जा सकता । मनुष्य की लगभग सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत में वृक्ष मौजूद हैं । वृक्षों के अनेक गुणों के कारण ही महात्मा बुद्ध ने अपने उपदेशों में लिखा है कि "हर आदमी को पांच साल बाद कम से कम एक वृक्ष अवश्य लगाना चाहिए ।" और ऐसा करना सम्भव है, क्योंकि उसमें न तो विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है और न किसी पूंजी की । केवल एक भावना मात्र होनी चाहिए और वृक्षों की उपयोगिता के प्रति जागरूकता ।

सामाजिक वानिकी और कृषि वानिकी

उन्नत और विकासशील दोनों ही प्रकार के देशों में खेती बाड़ी के विकास के फलस्वरूप पारिस्थितिकीय की और वातावरणीय क्षति हुई है । विकासशील देशों को मुख्य रूप से अधिक हानि हुई है, क्योंकि खाद्यान्नों, ईंधन और चारे की तलाश में गरीब लोगों ने बहुत से वृक्ष काट डाले । सम्यक रूप से परीक्षित वातावरण को बनाये रखने के लिए जो आत्मनियम के गुण होते हैं, वे गुण बड़े क्षेत्रों में जहां केवल एक ही फसल ली जाती है नहीं पाये जाते । निरन्तर उपज के लिए अभीष्ट

आर्थिक ढांचे के अन्तर्गत समुचित जैवी संतुलन बनाये रखना जरूरी है। इस संदर्भ में सामान्यतया "सामाजिक वानिकी" तथा विशेष रूप से "कृषि वानिकी" वास्तविक योगदान कर सकते हैं। सामाजिक वानिकी और कृषि वानिकी द्वारा कृषि और वन दोनों के क्षेत्र में उन्नति की जा सकती है। लोगों की वर्तमान आर्थिक आवश्यकताएं तो पूरी हो ही सकती हैं साथ ही वातावरण में भी सुधार हो सकता है।

भारतीय कृषि की अधिकांश सफलता-असफलता मौसम पर निर्भर करती है। आज भी कृषि के बहुत से परम्परागत औजारों में भी लकड़ी इस्तेमाल की जाती है। कृषि से मिलने वाली अपनी अपर्याप्त आमदनी को बढ़ाने के उद्देश्य से किसान लोग दुधारू पशु रखते हैं। गांवों में मकान लकड़ी और घास-फूंस के बनाये जाते हैं। घरेलू ऊर्जा का प्रमुख स्त्रोत अब भी लकड़ियां हैं जहां लकड़ी कम मिलती है वहां गोबर का इस्तेमाल होता है। गांवों में आज भी लकड़ी की बनी बैलगाड़ियां ही आने-जाने की सवारी के रूप में चलती हैं। कृषि की इन वस्तुओं ने कृषि को ऐसा बना डाला है कि कृषि अधिकांश वनों पर निर्भर रहती है। कृषि वानिकी, कृषि बागवानी वानिकी तथा पशुपालन का समन्वय उपस्थित करती है। इसका उद्देश्य भूमि के उपयोग के संबंध में एक मिला जुला दृष्टिकोण अपनाना है न कि कृषि को वानिकी से परम्परागत ढंग से मिला कर रखना है। कृषि की उस बेकार अनुत्पादक या सीमावर्ती भूमि का आर्थिक दृष्टि से लाभ उठाने, फार्म, बांधों या सीमाओं का और अधिक प्रयोग करने और कृषि की भूमि के विविध उपयोग करने में ही वृक्षों का अधिक महत्व है।

भारत में अच्छे चारे वाले वृक्ष हैं और ऐसे वृक्ष हर जगह पाये जाते हैं। इनमें बबूल, नीम, शहतूत, बेर, बांस आदि प्रमुख हैं। कुछ वृक्ष ऐसे हैं जो मानव को आहार प्रदान करते हैं जैसे बेर, जामुन, कटहल, अखरोट, महुआ आदि। इनकी उपज फसलों की तुलना में अच्छी तरह की जा सकती है। कुछ वृक्ष जैसे प्रोसोसिस, बबूल आदि ऐसे हैं जिनके फल पशुओं (गाय, भैंस, बकरी) के लिए अच्छे आहार हैं। यदि किसान भाई अधिक फलों और पत्तियों का पशुओं के आहार के लिए अधिक इस्तेमाल करें तो चराई से होने वाली बहुत सी क्षति से बचा जा सकता है। कृषि के लिये चिड़ियां लाभदायक अधिक हैं और हानिकारक कीट व्याधियों से कृषि की फसलों की रक्षा करने में कृषि पक्षी विज्ञान का बहुत महत्व है और इसकी जानकारी से विषैली कीटनाशी तथा फंफूद नाशी दवाओं का इस्तेमाल कम किया जा सकता है। कुछ ऐसे वृक्ष हैं जिनकी पत्तियों से बहुत अच्छी जैवी खाद तैयार होती है। उन्हें अजैवी खादों के समान ही महत्वपूर्ण समझा जाता है। दलहनी पेड़ों से मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है क्योंकि इनमें वातावरणीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण का गुण होता है।

वनों को कृषि की धाय मां कहा जाता है। शुष्क और मरुस्थलीय क्षेत्रों में वृक्षों की पत्तियां अत्यन्त लाभकारी हैं। सूखाग्रस्त क्षेत्रों में वृक्षों और घासों से पैदावार में स्थिरता आती है। हमारे देश में लगभग 7 करोड़ 50 लाख हैक्टेयर भूमि में वन हैं, परन्तु ऐसे वन जिनसे कुछ पैदा होता है और जो कारगर हैं लगभग आधे हैं। भारत में हर व्यक्ति के हिस्से में लगभग 1.20 हैक्टेयर जंगली भूमि आती है जबकि संसार में यह भूमि प्रति व्यक्ति 1.04 हैक्टेयर हैं। आस्ट्रेलिया में 2.9 हैक्टेयर भूमि और जापान जैसी घनी बस्ती वाले देश में 0.24 हैक्टेयर है।

वनों से बाड़ के सहारे फसलों की रक्षा होती है। वहीं एक ओर हवा की तेज रफ्तार की रोकथाम होती है और वातावरण में नमी बढ़ती है। इस प्रकार जलवायु अधिक अनुकूल होती है। वास्तव में भली भांति संरक्षित तथा सुप्रबन्धित वन कृषि उत्पादन के लिए वरदान सिद्ध हो सके हैं। आम तौर पर रबी की फसलों की पैदावार की अपेक्षा खरीफ की फसलों पर खेतों में लगे वृक्षों का प्रभाव कम पाया जाता है। सम्भवतः इसका कारण छाया का प्रभाव, नए तथा पोषक तत्वों का क्षय है। इसके फलस्वरूप पतझड़ वाले वृक्ष जैसे शहतूत, शीशम, यूकेलिप्टस के वृक्षों का अधिक महत्व है।

द्वारा श्री एस.पी. सिरौठिया
रि.प.अ. "एडवोकेट" चौबे
कालोनी छतरपुर (म.प्र.)

भारतीय कृषि में वानिकी

□ डॉ० विनेश चमोला □

आज पर्यावरण, वानिकी व प्रदूषण देश की मुख्य समस्याओं में से एक है। इसका प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में देश की भौगोलिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों पर सीधा पड़ता है। मूलतः इसका केन्द्र बिन्दु मनुष्य है। वह अपने कल्पनाशील मस्तिष्क से सृजन तो करता है परन्तु इस सृजन में से ही ऐसे तत्व आ पनपते हैं जिनका मानवीय विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण तथा प्रदूषण के प्रभाव से भौगोलिक परिवेश, भू-भाग व मानव जीवन का कोई भी पहलू अछूता नहीं रह पाया है। मनुष्य अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित होता है जिसकी छाप उसके भावी जीवन पथ पर कहीं न कहीं स्पष्ट हो जाती है। आज प्रदूषण व पर्यावरण की समस्या ने केवल बाह्य रूप में ही नहीं अपितु शारीरिक रूप में भी मनुष्य को प्रभावित कर दिया है। कल-कारखानों के विषैले धुएं ने जहां एक ओर वातावरण को दूषित किया है वहां दूसरी ओर मानव हृदय को भी विषाक्त कर दिया है। आज जिस हवा में हम प्राण दायिनी श्वास ग्रहण करते हैं वह भी प्रदूषण से विमुक्त नहीं है। एक पारिस्थितिकी वैज्ञानिक का कथन है कि–"पूर्व सोवियत संघ में 50 लाख लोग हवा में श्वास लेते हैं जिसमें दस गुणा प्रदूषक पदार्थ मिले हुए हैं। एक समुद्र, जो कभी विश्व के सबसे बड़े समुद्रों में छठे स्थान पर था, का 70 प्रतिशत पानी सूख गया है। पूर्व समाजवादी सोवियत गणराज्य के क्षेत्र में पिछले पांच वर्षों में फेफड़े का कैंसर 50 प्रतिशत हो गया है, पेट का कैंसर 30 प्रतिशत तथा जन्मदर दोष बढ़कर 55 प्रतिशत हो गये; इन सबका कारण कीटाणुनाशक (Pesticides) का अधिकतम प्रयोग है।

इससे स्पष्ट है कि लाभान्वित करने हेतु प्रयुक्त पदार्थ भी मानव जीवन के लिए कितने घातक सिद्ध हो सकते हैं। मनुष्य अपनी चिंताओं के निवारण व विकास के लिए कई प्रकार के वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग करता है। परन्तु समग्रतः इसका प्रभाव अच्छा नहीं रहता। खेतों में फसलों को कीट पतंगों से बचाने के लिए कई प्रकार की कीटनाशक दवाईयों का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार पानी की स्वच्छता व बीमारियों के निवारण के लिए भी कई प्रकार की रसायनिक वस्तुओं का प्रयोग होता है। इससे प्रदूषण की जड़े ही मजबूत होती हैं। प्रदूषण अपने प्रभाव के बहुत बड़े क्षेत्र को प्रभावित कर सकता है। संयुक्त राष्ट्र की पर्यावरण कार्यक्रम पत्रिका इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट करती है कि "पोलैण्ड में भूमि के क्षेत्रफल के 11 प्रतिशत भाग को, जिसमें कुल जनसंख्या का 35 प्रतिशत भाग निवास करता है, सरकार द्वारा पारिस्थितिकी संकटपूर्ण क्षेत्र घोषित किया गया है। कुछ क्षेत्रों को पारिस्थितिकी घोर संकटपूर्ण क्षेत्र भी घोषित कर दिया गया है।"

वनों के विनाश ने भी पर्यावरण प्रदूषण को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया है। हरे भरे जंगलों के कट जाने से भूक्षरण में सहजता आ गई, उपजाऊ मिट्टी पानी के बहाव के साथ बह गई फलस्वरूप फसलों की उपज/उत्पादन में स्वतः ही कमी हो गई। 110 लाख हैक्टेयर भूमि को वनों के अधीन करने की योजना है। जबकि 75 लाख हैक्टेयर भूमि को पहले ही वन घोषित किया गया है, केवल 64 लाख हैक्टेयर ही प्ररोही (Able to grow) है, उसमें भी केवल 37 लाख हैक्टेयर भूमि ही 40 प्रतिशत से अधिक उत्पादन करती है। वनों की कटाई संबंधी आंकड़ों से यह ज्ञात होता है कि वनों का अधिकतम विनाश स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही हुआ है। सन् 1950-1980 के बीच जंगलों की 4.5 लाख हैक्टेयर भूमि कृषि तथा इसकी विकास परियोजनाओं के लिए राजकीय रूप में प्रयुक्त की गई थी। हिमालय के कई क्षेत्रों में तो वन समूल रूप में नष्ट किये जा चुके हैं। इनके विनाश ने कई समस्याओं को निर्बाध रूप में पनपने का अवसर दिया है। मिट्टी का अवक्रमण होना प्रारम्भ हुआ। धरती का पानी सूखता ही चला गया। बाढ़ व सूखे का भी आविर्भाव हुआ। कुल उपलब्ध 330 लाख हैक्टेयर भूमि क्षेत्र के 150 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में ही खेती की जाती है। इसमें से 100 लाख हैक्टेयर भूमि का अवक्रमण हो गया है जो कि पूर्णतया लवणता व खारेपन से प्रभावित है।

वन-शमन से प्रकृति व प्राकृतिक अवयवों को भी पूरी ठेस पहुंची है। इससे न केवल मनुष्य ही प्रभावित हुए हैं अपितु पशु-पक्षी, जीव-जन्तु भी नहीं छूट पाये हैं। यद्यपि भारत जीव

विज्ञान की दृष्टि से एक धनाड्य देश है जिसमें पेड़-पौधों की 15 हजार से भी अधिक प्रजातियां पाई जाती हैं। लेकिन वनशमन के कारण से अधिकतम प्रजातियों के पेड़-पौधों का जीवन संकट में पड़ गए हैं।

आज के वैज्ञानिक प्रगतिशील युग में मनुष्य जीवन दौड़ को तेजी से दौड़े जा रहा है। उसके पास किसी उलझी समस्या के सुलझाव का समय नहीं है। अर्थापत्तियों के कारण वह निरंतर अर्थोपार्जन के लिए ही संघर्षरत हैं। इस दौड़ में वह स्वयं ही कई ऐसे कार्य कर बैठता है जो कि जीवन के लिए घातक सिद्ध हो जाते हैं। उसके द्वारा किये गये कार्य का प्रभाव आस-पास के वातावरण पर पड़ता है। वातावरण का प्रभाव सम्पूर्ण मानव जाति पर पड़ता है। प्राकृतिक सम्पदाओं के नष्ट होने के कारण जलवायु भी दूषित हो गई है जिससे केवल एक अपंग सृष्टि की ही रचना हो पाती है क्योंकि ऐसे वातावरण में किसी भी पदार्थ, जीव-जन्तु या मनुष्य का विकास उचित माध्यम से नहीं हो पाता है। प्राकृतिक अवयवों का स्थान बनावटी व कृत्रिम वस्तुओं ने ले लिया है जिसकी अवधि दीर्घकालिक व शाश्वत होकर केवल अल्पकालिक व नश्वर होती जा रही है। 70 प्रतिशत से भी अधिक जल स्रोतों को उद्योगों व मनुष्यों ने प्रदूषित कर दिया है। एक ओर पर्वतीय क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों के अभाव में कई संकट पैदा हो रहे हैं तो दूसरी ओर महानगरीय वायु को उद्योगों, स्वायत्त तथा थर्मल पावर संयंत्रों ने दूषित कर दिया है। पारा, शीशा, सल्फेट, नाइट्रेट्स, सल्फर डाई ऑक्साइड, कार्बन डाई ऑक्साइड, नाइट्रोजन डाई ऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड तथा मानवीय मल मूत्रों के कारण जन्मदोष, मूत्राशय रोग, जलन, अस्थमा तथा ब्रांकिटिस आदि पैदा होते हैं।

भारतीय कृषि व्यवस्था में भी नये-नये वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग होने लगा है। प्रौन्नत खेती के लिए समय-समय पर उचित उर्वरकों व रसायनिकों का प्रयोग किया जाता है। गहन खेती के लिए प्रयुक्त अधिकाधिक उर्वरक व दवाईयां भी जल को दूषित कर देती हैं। औद्योगिक विकास के लिए अपनाये गये विविध रसायनिक उपक्रम भी प्रदूषण संबंधी स्थितियों के जन्म-दाता होते हैं। देश की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है जिसमें से 40 प्रतिशत जनसंख्या प्राकृतिक उपहारों—भूमि, पानी और जंगलों पर ईंधन व अन्य कई सामग्रियों के रूप में रोजगार के लिए निर्भर रहती हैं। वर्तमान समय में मवेशियों की संख्या 40 करोड़ से भी अधिक है। इसका भी मिश्रित प्रभाव प्राकृतिक संसाधनों पर पड़ता है। इन चालीस-ब्यालीस वर्षों के दौरान सरकार द्वारा पर्यावरण एवं वन सम्पदा की रक्षा के लिए कई प्रकार के ठोस कदम उठाये गये हैं जिनमें से मुख्य अधिनियमों का ब्यौरा इस प्रकार है—जंगली जीव सुरक्षा अधिनियम, 1972, वन संरक्षण अधिनियम, 1930, जल प्रदूषण नियन्त्रण तथा निवारण अधिनियम 1981, वायु प्रदूषण नियन्त्रण तथा निवारण अधिनियम, 1981 तथा पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम, 1986 आदि मुख्य हैं।

इसके अतिरिक्त केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड व अन्य 23 राज्य बोर्डों की भी स्थापना की गई। औद्योगिक इकाइयों के लिए प्रदूषण नियन्त्रण संयन्त्र स्थापित करने के लिए कई प्रकार की वित्तीय सहायताओं (प्रोत्साहनों) का भी विस्तार किया गया। देश के कुल क्षेत्रफल का 4 प्रतिशत क्षेत्र राष्ट्रीय पार्कों व अरण्यों के लिए घोषित किया गया है। राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड द्वारा वन शमन को रोकने के लिए कई प्रकार की योजनाएं कार्यान्वित की गईं। बोर्ड ने 75 लाख हैक्टेयर भूमि को "बंजरभूमि" के रूप में वर्गीकृत घोषित किया है। विश्वविद्यालयों तथा राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में इस पर विकास तथा शोध का विस्तार किया गया। वायु, जल तथा वनों के अनुवीक्षण के लिए विस्तृत अवसंरचना को प्रारंभ किया गया।

इतने निवारक तत्वों के होते हुए भी पर्यावरण व प्रदूषण पर इसके परिणाम अच्छे नहीं रहे। प्रत्येक वर्ष जैविक दबाव के कारण पेड़ पौधों की विकसन शक्ति बहुत कम हो जाती है फिर भी वन शमन की दर कम होकर 47,500 हैक्टेयर हो गई है। उपरोक्त 4000 औद्योगिक इकाइयों में से लगभग आधे ही संयन्त्र ऐसे हैं जिन्होंने प्रदूषण नियंत्रण के रूप में कार्य करना प्रारंभ किया है, जबकि लाखों की संख्या में लघु इकाइयों ने अभी इन विषयों के सम्बन्ध में सोचना तक भी प्रारम्भ नहीं किया है।

उद्योगों के निरन्तर विकास में रसायनिक पदार्थों के प्रयोग ने असंख्य रसायनिक जोखिमों को जन्म दिया है। इनके नियन्त्रण व निवारण के लिए कई प्रकार के नियमों की अवस्थापना तो हुई है परन्तु भोपाल जैसी गैस त्रासदी का मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी उनके मन से दूर नहीं हुआ है। इस प्रकार के जैविक संयंत्रों की स्थापना में स्थानीय परिस्थितियों व संबंधित मनोविज्ञान को भी ध्यान में रखना चाहिए। जोखिम भरे उद्योगों की स्थापना अवस्था में ही इसकी सुरक्षा के आशातीत उपाय भी पहले सोच लिये जाने चाहिए। यद्यपि

सरकार पर्यावरण व वनों की सुरक्षा के लिए कई प्रकार के निवारक कदम उठा रही है फिर भी इन परियोजनाओं का कार्यान्वयन इतनी निश्चितता से नहीं हो पा रहा है । जन साधारण को भी यह अपना दायित्व समझना चाहिए कि कौन-कौन से तत्व पर्यावरण व प्रदूषण फैलाने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं । उनके विकास व दुष्प्रभावों की मूल अवस्था तक पहुंच। जाये ताकि इसके कारणों की जानकारी हो सके । पर्यावरण व विकास एक दूसरे के समानान्तर चलते हैं जबकि कई व्यक्ति पर्यावरण को विकास के मार्ग की बाधा मानते हैं । यदि इसे प्रारंभिक अवस्था में न रोका गया तो इसके भावी परिणाम आने वाली पीढ़ियों के लिए घातक सिद्ध हो सकते हैं ।

यही अनुभव आज संयुक्त राज्य अमेरिका व पूर्वी यूरोप के देशवासियों का हो रहा है जो अपने पूर्वजों द्वारा की गई भूलों के परिणामस्वरूप देश की सम्पत्ति का एक बहुत बड़ा हिस्सा इस निमित्त तबाह कर चुके हैं ।

पर्यावरण अवक्रमण का सीधा प्रभाव गरीब तबके पर पड़ता है जो कि प्रदूषण द्वारा फैली हुई बीमारियों के शिकार बन जाते हैं । यहां तक की पीने के पानी के लिए इस तबके को मीलों तक सफर तय करना पड़ता है । आर्थिक रूप से कमजोर होने पर इन्हें अपने परिवार के कई-कई सदस्यों का जीवन प्रदूषण की बलि चढ़ जाते हैं । दूर-दराज के पहाड़ी क्षेत्रों में वैसे ही चिकित्सा सुविधाओं की कमी होती है और फिर आधी से अधिक मृत्यु का कारण इनकी आर्थिक कमजोरी बनती है । यदि समाज के सभी अधिकारी, कर्मचारी तथा कार्यकर्ता अपने-अपने कार्यों को पर्यावरण संबंधी प्रभावों को ध्यान में रख कर करें तो यह स्थिति ही क्यों उत्पन्न हो । उद्यमी औद्योगिक इकाइयों को, कार्य संचालक–जो संयंत्रों को चलाते हैं, सिंचाई अभियन्ता–जो बांधों का निर्माण करते हैं, अभियन्ता–जो पावर संयंत्रों को स्थापित करते हैं, गृहपति–जो शक्ति का उपयोग करते हैं, राजनीतिज्ञ– जो परियोजनाओं को प्रोन्नत करते हैं, न्यायाधीश–जो पर्यावरण संबंधी दोषियों को सजा देते हैं, चिकित्सक–जो प्रदूषण रोगियों का इलाज करते हैं, इन सबको चाहिए कि वे अपने-अपने कार्यों में प्रदूषण संबंधी प्रभावों-दुष्प्रभावों से सचेत रहें । महज सचेत रहना ही काफी नहीं है अपितु विद्यार्थियों, अभियन्ताओं, प्रशिक्षुओं को पर्यावरण संबंधी प्रशिक्षण भी दिए जाने चाहिए । तकनीकी को इस तरह से सीमित किया जिससे सरलता से प्रदूषण नियन्त्रित हो सके । वास्तुविद् भवनों का निर्माण इस ढंग से करें कि वहां वातानुकूलकों व ऊष्मकों का उपभोग करने में ऊर्जा का कम प्रयोग हो । यह संभाव्य है कि यदि अपने-अपने क्षेत्रों में कार्यरत सभी व्यक्ति पर्यावरण व प्रदूषण के प्रभावों से सचेत रहें तो इसे काफी मात्रा तक रोका जा सकता है । प्रदूषण के प्रभाव से 9.6 लाख सूखे कुएं, 4.6 लाख सूखे नलकूप, 72 हजार सार्वजनिक नलकूप तथा लगभग 12.4 लाख विद्युत व डीजल पम्पसैट हैं जिनकी संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है । परन्तु इसके विपरीत कृषि के क्षेत्र में सकारात्मक परिणाम भी सामने आये हैं । पिछले 40 वर्षों के दौरान खाद्य सामग्री में 50 लाख टन से बढ़कर 175 लाख टन की वृद्धि हुई है । इसी प्रकार इस बीच दूध का उत्पादन 17 लाख टन से 51 लाख टन तथा अंडों के उत्पादन में दस गुणा वृद्धि हुई है । चीनी उत्पादन, जो वर्ष 1980-81 के दौरान 51.5 लाख टन था, वह 1989-90 के दौरान बढ़कर 110 लाख टन हो गया । इसी प्रकार पटसन तथा बाजरे की फसलों में भी काफी वृद्धि हुई ।

वन सम्पदा राष्ट्र की सर्वोत्तम सम्पदाओं में से एक है । जिस पर पर्यावरण प्रदूषण का बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है । राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड का अनुमान है कि खेती के 154 लाख हैक्टेयर भूमि में से 80 लाख हैक्टेयर भूमि पर पुनर्वास की अपेक्षा है । इसी तरह भारतीय वन सर्वेक्षण का अनुमान है कि कुल वन क्षेत्र 64.2 लाख हैक्टेयर में से केवल 36.14 लाख क्षेत्र ही सही घनत्व के अन्तर्गत आता है । इसीलिए वास्तव में वन क्षेत्र देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 10.88 प्रतिशत तक सीमित है । पारिस्थितिकी की सुरक्षा के लिए कम से कम सम्पूर्ण पृथ्वी का 1/3 भाग जंगलों के अधीन होना चाहिए । भारत के कृषि जानवरों की जनसंख्या संसार की पशु जनसंख्या का 25 प्रतिशत है लेकिन कुल क्षेत्रफल का 3.7 प्रतिशत ही स्थाई रूप से चरागाहों के अधीन है । वन सम्पदा के विनाश का प्रभाव जैविक वर्ग पर भी पड़ता है क्योंकि उत्तम प्रकार के पशुओं की उन्नत किस्में, उन्नत फसल तथा जलवायु पर ही निर्भर होती है । इन समस्याओं के होने का प्रभाव पूरे जीव तन्त्र पर भी दृष्टिगोचर होता है ।

पिछले 15 वर्षों के दौरान वातावरण में कार्बन डाई ऑक्साइड का संचय 1.5 (भाग प्रति लाख) प्रतिवर्ष था । वर्ष 1989 से पिछले 18 महीनों के दौरान यह दर बढ़कर 2.4 (भाग प्रति लाख) प्रतिवर्ष हो गई । वर्तमान समय में ग्लोब उष्मा में कार्बन डाई ऑक्साइड का भाग 50 प्रतिशत है ।

दूसरे 50 प्रतिशत में अन्य गैसें–मिथैन, नाइट्रस तथा क्लोरो-फ्लोरो कार्बन आदि हैं ।

विश्व की ऊष्मा स्राव की दर 0.2 से बढ़कर 0.5 सेंटीग्रेड प्रति दशक हो जाएगी । समुद्र के जल स्तर की भी प्रति दशक 5 से 24 सेमी. बढ़ने की आशा है । द्वितीय विश्व युद्ध के बाद कोयला, तेल, प्राकृतिक गैसों तथा व्यावसायिक शक्तियों स्रोतों के उपभोग में भी वृद्धि हुई है । ईंधन तथा इस प्रकार के प्राकृतिक गैसों के प्रयोग से प्रतिवर्ष वातावरण में लगभग 20 अरब टन कार्बन डाई ऑक्साइड मिलती है । वन शमन के कारण कार्बन डाई ऑक्साइड वातावरण में दोनों रूपों में–लकड़ियों के जलने के कारण बढ़ती भी है तथा कार्बन स्थायीकरण के कारण घट भी जाती है । प्रतिवर्ष कार्बन डाई ऑक्साइड को सोखने के लिए कम से कम 4 लाख वर्ग किमी. क्षेत्र में फैले नये वनों की आवश्यकता पड़ेगी ।

भारतीय कृषि को कीट पतंगों से भी भारी क्षति होती है जिसका सीधा प्रभाव देश की अर्थव्यवस्था व बढ़ती पीढ़ी पर पड़ता है । क्योंकि देश की अधिकतम जनसंख्या कृषि से ही अपनी जीविका चलाती है । इसकी रोकथाम के लिए कई प्रकार के विषाक्त उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है, जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में बहुत बुरा होता है । कीटाणु वैज्ञानिक ने यह स्पष्ट करते हुए लिखा है कि–भारत में वार्षिक फसलों की औसतन क्षति रुपये 6000 से 7000 करोड़ तक है । इस क्षति में अपतृण से होने वाली क्षति 33 प्रतिशत, बीमारियों से 26 प्रतिशत, कीड़ों तथा कृन्तकनाशी से 26 प्रतिशत, तथा बाकी पक्षियों व गोलकृमियों से हैं । 70 प्रतिशत से अधिक प्रयुक्त कीटाणुनाशक दवाइयों में से अधिकतर कीटनाशी ही होती हैं, 12 से 15 प्रतिशत तक फंफूदनाशी तथा लगभग 4 से 5 प्रतिशत तक अपतृणनाशी होते हैं ।

90 हजार कुल वार्षिक कीटाणुनाशक दवाइयों में से 63 प्रतिशत दवाइयों का प्रयोग कृषि उद्देश्यों के लिए किया जाता है जबकि बाकी बची मात्रा का प्रयोग मलेरिया नियन्त्रण तथा अन्य कार्यक्रमों के लिए किया जाता है । लगभग 600 करोड़ रुपये का कृषि कीटाणुनाशक बाजार आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, गुजरात तथा पंजाब में केन्द्रित है, जिनका 76 प्रतिशत विक्रय प्रयोग कपास, धान, ज्वार तथा गेहूं की फसलों के लिए किया जाता है । इन चार फसलों में भारत में बेची जाने वाली कीटाणुनाशक दवाइयों की 80 प्रतिशत मात्रा का प्रयोग किया जाता है जबकि फलों तथा सब्जियों में इसके प्रयोग की कुल मात्रा 10 प्रतिशत है । 77 हजार से अधिक कीटाणुनाशक वितरण केन्द्रों से लगभग 70 प्रतिशत से भी अधिक केन्द्र आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश, गुजरात तथा पश्चिम बंगाल में गैर सरकारी व्यक्तियों द्वारा ही चलाये जाते हैं ।

पूर्ण रूप से शोषित खेती पद्धति के खतरों के कारण ही हरित क्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ था । इसी प्रकार 1968 में गेहूं क्रान्ति भी प्रारंभ हुई । जबकि उस वर्ष इससे पिछले वर्ष की अपेक्षा गेहूं का उत्पादन 5 लाख टन से अधिक हुआ था । इस प्रकार हम देखते हैं कि पर्यावरण की समस्या ने प्रकृति के हर पहलू को अपनी पूरी शक्ति से प्रभावित किया है तथा इसका सीधा प्रभाव मानवता पर भी पड़ा है ।

वर्तमान में विश्व की जनसंख्या विगत शताब्दी के प्रारंभ की जनसंख्या से 8 गुणा बढ़ गई है, जिसकी 3 गुणा वृद्धि केवल भारत में ही हुई है । जनसंख्या के विकास की तुलना में मनुष्य के कार्यक्रमों की क्षमता बहुत बढ़ी है । औद्योगिक विकास में 100 गुणा वद्धि हुई है । अरगजी, शीशा व विषाक्त धातुओं में स्राव संख्या के कारण इसका प्रभाव प्राकृतिक गैसों की तुलना में कई गुणा बढ़ गया है । इस संपूर्ण पर्यावरण विकृति का मूल मनुष्य व उसकी इस प्रकार की गतिविधियां ही हैं । यदि बुद्धिवादी मानव समाज किसी भी वैज्ञानिक व प्रयोगात्मक कार्य करने से पहले इसके सम्भावित हानि-लाभों तथा पर्यावरण प्रभावों पर विचार करें तो निश्चिततः यह समस्या ही उत्पन्न नहीं हो सकती ।

राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड,
कृषि मंत्रालय, भारत सरकार
442 सैक्टर-14
गुड़गांव-122 001.

7.10-92

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/92
पूर्व भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DL) 12057/92
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
वीरेन्द्रा प्रिंटर्स, हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-110005 द्वारा मुद्रित